वेदसर्वस्व

प्रथम भाग

श्रीमन्निखिलशास्त्रनिष्णातपण्डितस्वामि-
हरिप्रसादवैदिकमुनिविरचित ।

तथा

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध से
सेठ रामगोपाल पण्डित अनन्तराम के
सद्धर्म्म-प्रचारक यन्त्रालय, देहली में छपवाकर प्रकाशित ।

प्रथमवार १००० | संवत् १९७३ विक्रमीय, सन् १९१६ ई. | मूल्य १।)

ओ३म्

भूमिका ।

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्नो इन्द्रो बृहस्पतिःशन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ १ ॥

वेद का मनुष्यमात्र के साथ सम्बन्ध सामान्य होने पर भी हिन्दु-जाति के साथ विशेष सम्बन्ध है । इस के अनेक कारण हैं । **प्रथम** तो मनुष्यसृष्टि के आरम्भ में हिन्दुजाति का प्रादुर्भाव जिन ऋषियों से हुआ है, वेद का प्रादुर्भाव भी उन्ही ऋषियों से हुआ माना गया है । "**प्रवराध्याय**" तथा "**प्रवरमञ्जरी**" के देखने से विदित होता है कि मनुष्यसृष्टि के आरम्भ में हिन्दुजाति के प्रादुर्भावक विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि, गौतम भरद्वाज तथा अगस्त्य आदि अनेक ऋषी हुए हैं, जो वर्तमान में गोत्र नाम से प्रसिद्ध हैं । **गोत्र** वंश को कहते हैं । उनमें विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि आदि आठ ऋषी मुख्य, और अन्य सब अमुख्य हैं । वेद के प्रादुर्भाक भी यही सब ऋषी हैं । जिसने वेदों का अभ्यास किया है, और "**सर्वानुक्रमणी**" तथा **आर्षानुक्रमणी**" को पढ़ा है, उस से यह अज्ञात नही है कि वेद के प्रादुर्भावक ऋषियों में भी विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि, भरद्वाज, आदि प्रधान और अन्य सब अप्रधान ऋषी हैं । **दूसरा** प्रत्येक मनुष्यजाति का अभ्युदय तथा अधःपतन उसके साहित्य पर निर्भर है । जिस मनुष्यजाति का साहित्य उदार तथा निर्मल है, उसका अभ्युदय और जिस का इस से विपरीत है, उसका अधःपतन निश्चित है । हिन्दुजाति का साहित्य संस्कृत भाषा में है । उस का समग्र अंश यद्यपि इस समय उपलब्ध नही, तथापि जितना कुछ उपलब्ध है, वह

उक्त दोनों गुणों से कहां तक भूषित है, यह साहित्यसेवी विद्वानों से छिपा नही है। इस सर्वोत्तम संस्कृतसाहित्य कल्पवृक्ष का मूल एक वेद है। वेद से ही इस संस्कृतसाहित्य कल्पवृक्ष का उत्थान हुआ है। हिन्दुजाति ने भी इसी संस्कृतसाहित्य कल्पवृक्ष के मूल का आश्रयण कर लोकोत्तर अभ्युदय प्राप्त किया था, और अब भी उस के प्राप्त करने की पूरी आशा है। जिस साहित्य-कल्पवृक्ष के मूल का आश्रयण हिन्दुजाति के लिये अभ्युदयप्राप्ति का हेतु हुआ है, और आगे होने की पूरी आशा है, उसके साथ हिन्दुजाति का विशेष सम्बन्ध कुछ अनुपपन्न नही कहा जा सकता। **तीसरा** वेद हिन्दुजाति का प्राचीन धर्मपुस्तक है। धर्मपुस्तक प्रायः आस्तिक जनता में ईश्वरवचन माना जाता है, और अवश्य माना जाना चाहिये। धर्मपुस्तक में जो कुछ निरूपण किया गया है, वह बिना विलम्ब माननीय और पालनीय होता है। अत एव प्रत्येक बुद्धिमान् आस्तिक पुरुष सर्वतः सर्वदा सर्वत्र उस का पालन ही करता है, उल्लङ्घन भूल कर भी नही करता। ईश्वरवचन की भी यही दशा है। ऐसी अवस्था में आस्तिक जनता का धर्मपुस्तक को ईश्वरवचन मानना, किसी प्रकार भी अयुक्त नही कहा जा सकता। और जो धर्मपुस्तक वास्तव में ईश्वरवचन है, उस के वैसा मानने में तो अयुक्तता की चर्चा ही व्यर्थ है। व्यवहार में माता पिता आदि के समान राजवचन माननीय होता है, धर्मपुस्तक का वचन व्यवहार और परमार्थ, दोनों में माननीय है। एक में माननीय की अपेक्षा दो में माननीय विशेष माननीय कहा जाता है। जो विशेष माननीय है, उसके साथ विशेष सम्बन्ध का होना भी आवश्यक है। जिस वेद के साथ हिन्दुजाति का विशेष सम्बन्ध है। आज हिन्दुजाति उससे सर्वथा अनभिज्ञ है। वह 'वेद में क्या लिखा है, यह तो दूर रहा, वेद कितनी
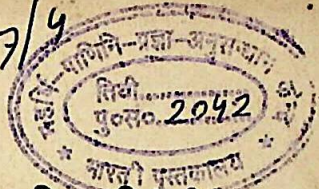
बड़ी पुस्तक है, यह भी नहीं जानती । हिन्दुजाति की इस अनभिज्ञता को देख कर ही पण्डित **शिवशङ्कर** काव्यतीर्थ जी ने **वैदिकेतिहासार्थनिर्णय** की भूमिका में लिखा है—"आज कल के समय में बहुत से नर नारियां वेद नाम ही सुन कर अनुमान करते हैं कि वेदों में कोटियों, अर्बों, खर्बों श्लोक होंगे, इस युग में अल्पायु होने के कारण चारों वेदों का सम्पूर्ण जीवन लगा कर भी एक वार पाठ कोई नहीं कर सकता । ऐसा बोध केवल उन अपठित स्त्रियों और पुरुषों को ही नहीं, किन्तु बड़े बड़े वैयाकरण, नैयायिक, मीमांसक और पुराणपाठी आदि विद्वान् भी ऐसा ही समझते हैं । क्योंकि दुर्योगवश आज तक सहस्रों ग्रामीण अथवा बहुधा नागरिक विद्वानों को भी चारों वेदों का दर्शन तक भी नहीं हुआ है" । हिन्दुजाति बड़ी सभ्य और विद्याभ्यासी है, उस के लिये अपने विशेषसम्बन्धी वेद के विषय में इतनी उदासीनता उचित प्रतीत नहीं होती । यदि इस उदासीनता का कारण यह कहा जाये कि वेद के पठन पाठन से वर्तमान साम्प्रदायिक धर्मग्रन्थों के पठन पाठन में अरुचि उत्पन्न हो जाती है, इस लिये हिन्दुजाति उस के पठन पाठन में उदासीन है, तो ठीक नहीं कहा जा सकता । क्योंकि वेद शिक्षा की पुस्तक है, खण्डन मण्डन की नहीं । खण्डन मण्डन की पुस्तकों के पठन पाठन से साम्प्रदायिक ग्रन्थों के पठन पाठन में अवश्य अरुचि उत्पन्न हो जाती है, परन्तु जो शिक्षा की पुस्तक है, उसके पठन पाठन से नहीं । वेद शिक्षा की पुस्तक है । उस के पठन पाठन से हिन्दुजाति को वह शिक्षा प्राप्त हो सकती है, जो मनुष्यजाति को प्राप्त होनी चाहिये । प्रत्येक मनुष्यजाति लौकिक तथा पारलौकिक सुख सम्पत्ति को तभी प्राप्त कर सकती है, जब उस को प्राकृत नियमों के अनुसार शिक्षा प्राप्त हो । वेद प्राकृत नियमों के अनुसार शिक्षा का प्रदान करता है, उस के

प्रत्येक मन्त्रशिखर से मनुष्यधर्मोचित शिक्षाजल का स्वच्छ स्रोत बहता है, जो मनुष्य मात्र को रात्रिन्दिवा यथाभिलाष निःशंक पातव्य है।

वर्तमान समय में हिन्दुजाति संकीर्णहृदयता, ईर्ष्यालुता तथा कातरता आदि अनेक दोषों का आगार बन रही है, उस का कारण यही है कि वह अपने साम्प्रदायिक धर्मग्रन्थों के साथ वेद का पठन पाठन नही करती। हिन्दुजाति के लिये यह विशेषतः स्मरण रखने की बात है कि जो संकीर्णहृदयता, ईर्ष्यालुता तथा कातरता आदि अनेक दोष उस में आ गये हैं, वे वेद के ही पठन पाठन से निवृत हो सकते और उस के स्थान में उदारहृदयता, मित्रता तथा वीरता आदि अनेक सद्गुण आ सकते हैं। इन सब सद्गुणों का मूल कारण देश-हित, जातिहित तथा आत्महित है। जब तक मनुष्य में देशहित, जातिहित तथा आत्महित उत्पन्न नही होता, वह कदापि उक्त सद्गुणों से विभूषित नही हो सकता, और नाही उस को लौकिक तथा पारलौकिक सुखसम्पत्ति प्राप्त हो सकती है। वेद की शिक्षा में यही एक असा-धारण गुण है कि वह प्रथम मनुष्य के हृदयक्षेत्र में देशहित, जातिहित, तथा आत्महित का वीज यथोचित रीति से बो देती है, पश्चात् स्वय-मेव उदारहृदयता, मित्रता तथा वीरता आदि कल्पतरु उत्पन्न होने लग जाते हैं, जिस से वह अनायास ही लौकिक तथा पारलौलिक सुख-सम्पत्ति को प्राप्त कर संसार की सब मनुष्यजातियों से आगे बढ़ जाती है। यह हिन्दुजाति के अल्प दुर्भाग्य की बात नही है कि उस के पास ऐसा अमूल्य शिक्षाप्रद वेद पुस्तक होने पर भी वह उसकी शिक्षा से आज कल सर्वथा वञ्चित है। प्रत्येक मनुष्यजाति अपने पूर्वजों की सम्पत्ति को सुरक्षित रखने और उस से यथोचित लाभ उठाने में अपना अहोभाग्य समझती है, और अहर्निश ऐसा प्रयत्न करती है कि

जिससे उस का अपने पूर्वजों के साथ अटूट सम्बन्ध बना रहे। परन्तु हिन्दुजाति में इन सब बातों का अभाव है। उस को निश्चित जानना चाहिये कि वेद उस के पूर्वजों की अमूल्य सम्पत्ति है, उस की सुरक्षा के लिये उससे मनुष्योचित शिक्षा का लाभ उठाना और यावज्जीव मनुष्यमात्र में प्रचार करना उस का परम कर्तव्य है। यदि वह अपने इस कर्तव्य का पालन नहीं करती, तो उस के पूर्वजों की यह अमूल्य सम्पत्ति कदापि सुरक्षित नही रह सकती, और उस के सुरक्षित न रहने से उसका अपने पूर्वजों के साथ अटूट सम्बन्ध भी नहीं रह सकता। ध्यानपूर्वक देखा जाये, तो अन्य मनुष्यजातियों के समक्ष हिन्दुजाति के लिये यह कुछ अल्प लज्जा की बात नहीं है। अतएव यहां हिन्दुजाति से साग्रह अनुरोध करना पड़ता है कि वह अपने साम्प्रदायिक झगड़ों को छोड़ कर वेद के पठन पाठन में यथाशक्ति चित्त को लगाये, और उस में जो शिक्षारत्न उस के पूर्वजों ने उस के लिये गुन्थन किये हुए हैं, उन को प्राप्त कर संसार की मनुष्यजातियों में सत्करणीय तथा अनुकरणीय बने। क्योंकि उस की वर्तमान अवस्था बड़ी शोचनीय तथा घृणोत्पादक है।

यह लोक- शास्त्र- प्रसिद्ध है कि श्रेष्ठ कुल के मनुष्य, विशेषसम्बन्ध तो दूर रहा, सामान्य सम्बन्ध का भी यथाशक्ति यावज्जीव निर्वाह किया करते हैं। हिन्दुजाति का वेद के साथ सामान्य सम्बन्ध नहीं, किन्तु विशेष सम्बन्ध है। यदि हिन्दुजाति अपने को जीवित मानती हुई अपने विशेष सम्बन्ध का निर्वाह न करे, तो उस के लिये नितान्त आक्षेप की बात है। क्योंकि वह अन्य मनुष्यजातियों की अपेक्षा कुल में सब से श्रेष्ठ है। वेद के विशेषसम्बन्ध का यावज्जीव निर्वाह उस का यथाविधि पठन पाठन है। यदि हिन्दुजाति वेद

का यथाविधि पठन पाठन करे, तो उस के लिये इस से बढ़ कर और कोई श्रेयस्कर कार्य्य नही कहा जा सकता।

प्रायः लोग कहते हैं कि अन्य पुस्तकों की अपेक्षा ईश्वरीय-पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक होता है, परन्तु अपने पूर्वजों की बनाई पुस्तक का मूल्य भी किसी ईश्वरीय–पुस्तक से अल्प नही होता, यह प्रायः समस्त विज्ञमण्डली का मत है। हिन्दुजाति को उचित है कि वह वेद का ईश्वरीयपुस्तक मान कर अथवा अपने पूर्वजों की बनाई पुस्तक मान कर किंवा अपने संस्कृतसाहित्य का मूर्धन्य पुस्तक यद्वा अपना प्राचीन धर्मपुस्तक मान कर यथाविधि निरन्तर पठन पाठन और लोक में खुला प्रचार करे।

जो यह बुद्धिमान् जनसमुदाय का कथन है कि वेद की भाषा कठिन होने से उस का अब हिन्दुजाति में पूर्ववत् पठन पाठन नही हो सकता, वह अंशतः ठीक होने पर भी सर्वशः ठीक नही है। क्योंकि अनभ्यास के कारण ही वेद की भाषा कठिन प्रतीत होती है, वस्तुतः कठिन नही। यह सर्वानुभवसिद्ध है कि आरम्भ में मनुष्यजाति के लिये प्रत्येक भाषा कठिन हुआ करती है, परन्तु जब अभ्यास हो जाता है, तब सब कठिनता दूर भाग जाती है। वेद की भाषा के विषय में तो यह कथन कुछ कुतूहलजनक न होगा कि वह पञ्जाबी भाषा से यत्किञ्चित् भी कठिन नही है। पञ्जाबी भाषा में जो विदेशी भाषा के शब्द मिल गये हैं, उनको निकाल दिया जाये, तो शेष पञ्जाबी भाषा और वेद की भाषा में कुछ भी अन्तर नही। यदि कुछ अन्तर कहा जा सकता है, तो केवल इतना कि पञ्जाबी भाषा में वैदिक शब्द थोड़ा अपभ्रंश होकर बोले जाते हैं, और वेद में नही। पञ्जाबी भाषा के पठन पाठन में कितनी कठिनता है, यह प्रत्येक भाषाज्ञ जानता है, उसके विषय में अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नही।

वेद के पठनपाठन में हिंदुजाति की उदासनीता का जो यह हेतु कथन किया जाता है कि शाखा-भेद के कारण वेद पुस्तक कुछ अनिर्धारित सी होगई है, यदि हिन्दुजाति पठन पाठन करे, तो किस शाखा संहिता का ? इसका उत्तर अवश्य कठिन है। जिस प्रकार आजकल हिन्दुजाति में सम्प्रदायभेद बलवान है, वैसे इससे पूर्व शाखाभेद बलवान था, जो परम्परागत वैदिकपद्धति का उच्छेदक और याज्ञिकसम्प्रदाय तथा वर्तमान सम्प्रदायभेद का उज्जीवक हुआ। परन्तु अब वह बलहीन होगया है, सम्प्रदायभेद ने उसका मर्दन पूर्णरूप से कर दिया है। तथापि उसके कारण वेद के अनेक भेद अब भी पाये जाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, यह चार वेद हैं। इनमें प्रत्येक वेद के दो दो तीन तीन पुस्तक देखने में आते हैं, जो शाखा भेद के नाम से विख्यात हैं। इन को देखकर साधारण पुरुष तो क्या, विद्वान् भी व्यामोह को प्राप्त हो जाता है, और कौन पठितव्य, कौन अपठितव्य, यह निर्धारण नही कर सकता, हिन्दुजाति के लिये यह बात बड़ी हानिकारक है। विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

ईरूपीय विद्वानों ने वेदविषय में बहुत कुछ परिश्रम किया है, और अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं, परन्तु उनका परिश्रम और उनकी लिखी पुस्तकें प्रशंसायोग्य होने पर भी हिन्दुजाति के लिये लाभकारी नही। क्योंकि जिस दृष्टि से उन्होंने परिश्रम किया और पुस्तकें लिखी हैं, उस दृष्टि और हिन्दुजाति की दृष्टि में बहुत बडा भेद है। ईरूपीय विद्वानों की दृष्टि में वेद एक प्राचीन पुस्तक है, हिन्दुजाति की दृष्टि में वेद उस का प्राणप्रिय सर्वस्व है। सत्य तो यह है कि हिन्दुजाति के पूज्य पूर्वपुरुषों के विषय में ईरूपीय विद्वानों और हिन्दुजाति का जितना बड़ा दृष्टिभेद है, वेद के विषय में भी उतना ही

बड़ा दृष्टिभेद है, न्यून नही। ऐसी दृष्टिभेद की स्थिति में लिखी गई पुस्तकें हिन्दुजाति को कदापि लाभ नही पहुचा सकतीं ॥

मेरा बहुत दिनों से विचार था कि वेदसम्वन्धी एक पुस्तक लिखी जाये, जिसमें वेदसम्बन्धी सब विषयों का सप्रमाण निरूपण और उसका यथोचित निर्धारण हो। परन्तु सहायक-सामग्री के न मिल सकने से मैं अपने इस विचार को शीघ्र कार्य्यरूप में परिणत न कर सका। गत वर्ष परमपिता परमात्मा के विशेष अनुग्रह से मुझे वह सब सहायक सामग्री मिल गई, और उसके मिल जाने से मैंने **वेदसर्वस्व** नाम की पुस्तक लिखनी आरम्भ की। यह पुस्तक तीन भागों में समाप्त होगी। प्रथम और द्वितीय भाग में मन्त्र (संहिता) सम्वन्धी, और तीसरे भाग में ब्राह्मणसम्बन्धी सब विषयों का प्रमाणसहिता सविस्तर निरूपण होगा। सम्प्रति केवल प्रथम भाग लिखा गया है, और वह आप सबके अवलोकनार्थ छपवा दिया गया है,और साथ ही तीनों भागों की संक्षिप्त विषयसूची भी छपवा दी गई है। आशा है आप इसको देखकर किसी उत्तम परिणाम पर पहुचेंगे,और इस बिखरी हुई हिन्दुजाति में वेद प्रचार के द्वारा इकत्तीभाव का सूत्रपात करेंगे।

सम्भव है मेरे इस लेख में कोई त्रुटि रह गई हो, अथवा सर्वज्ञ न होने के कारण कोई लेखनीय विषय छूट गया हो, यदि सहृदयगण द्वितीय भाग के छपने से पूर्व मुझे सूचना दे देंगे, तो त्रुटि के पूर्ण करने और लेखनीय विषय के लिखने का अवश्य यत्न किया जायगा ॥

ओ३म्

वेदसर्वस्व के प्रथम भाग की

विषय सूची

ऋक्संहिता

शाखा ।

यजुःसंहिता

सामसंहिता।

शाखा।

ओ३म्

वेदसर्वस्व के द्वितीयभाग की

विषय सूची

वेदसर्वस्व के तृतीयभाग की

विषय सूची

॥ ओ३म् ॥

वेदसर्वस्व

प्रथम भाग

वेद नाम है ज्ञान का, जो ईश्वर ने आप।
ऋषिगण के मन में दिया, मिटे जगत् सन्ताप ॥ १ ॥

अष्टाध्यायी के कर्ता **पाणिनि** मुनि वेद शब्द को रूढ़ तथा योगरूढ़ भेद से दो प्रकार का मानते हैं। रूढ आद्युदात्त और योगरूढ़ अन्तोदात्त है, यह उनके गणपाठ के देखने से प्रतीत होता है। "**उञ्छादि**" (अष्टा० ६ । १ । १६०) और "**वृषादि**" (अष्टा० ६ । १ । २०१) गण में वेद शब्द का पाठ किया गया है। उञ्छादि गण में पाठ का प्रयोजन अन्तोदात्तत्व की सिद्धि और वृषादि गण में पाठ का प्रयोजन आद्युदात्तत्व की सिद्धि है। यदि पाणिनि मुनि वेद शब्द को रूढ़ न मानते होते, तो एक उञ्छादि गण में ही उस का पाठ करना पर्याप्त था, वृषादि गण में पाठ करने की कोई आवश्यकता न थी। क्योंकि उञ्छादि गण में 'करण' प्रत्ययान्त वेद शब्द को अन्तोदात्त कहने से अन्य प्रत्ययान्त यावत् वेद शब्द अर्थ से आद्युदात्त सिद्ध हो जाता है। शेष कोई रहता नही, जिस के लिये वृषादि गण में पाठ करने की आवश्यकता समझी जाये। रह जाता है तो केवल एक रूढ़ वेद शब्द,

जो वृषादि गण में पाठ किये विना किसी प्रकार भी आद्युदात्त सिद्ध नही हो सकता। इसलिये यह मानना पड़ता है कि उक्त मुनि के मत में वेद शब्द रूढ़ तथा योगरूढ़ भेद से दो प्रकार का है। धातु हो वा नाम, जिस से प्रत्यय होता है, वैयाकरणों के मत में उस की संज्ञा **प्रकृति** है। जो शब्द प्रकृति तथा प्रत्यय, दोनों की अपेक्षा न करता हुआ केवल समुदाय शक्ति से अपने वाच्य अर्थ को कहता है, उस को **रूढ़** और जो प्रकृति तथा प्रत्यय, दोनों के अर्थ की अपेक्षा करता हुआ समुदाय शक्ति से अपने वाच्य अर्थ को कहता है, उस को **योगरूढ़** कहते हैं। यद्यपि उक्त मुनि के मत में इस प्रकार वेद शब्द का भेद है, तथापि अर्थ का भेद नही। क्योंकि रूढ़ वेद शब्द का वाच्य जो ग्रन्थ विशेष है, योग-रूढ़ वेद शब्द का वाच्य भी वही ग्रन्थ विशेष है। भेद केवल इतना है कि रूढ़ वेद शब्द समुदाय शक्ति से उस को कहता है, और योगरूढ़ वेद शब्द समुदाय शक्ति तथा प्रकृति प्रत्ययरूप अवयवशक्ति दोनों से उस का कथन करता है। उक्त दोनों वेद शब्दों में रूढ़ वेद शब्द की सिद्धि अपेक्षित नही, वह स्वयं सिद्ध है। शेष योगरूढ वेदशब्द "**विद्**" धातु से, जिस का अर्थ ज्ञान है, करण अर्थ में '**घञ्=अ**" प्रत्यय होने से सिद्ध होता है। अष्टाध्यायी में उक्त धातु से उक्त प्रत्यय का विधायक "**हलश्च**" (अष्टा० ३। ३। १२१) सूत्र है। हलन्त धातु से करण तथा अधिकरण अर्थ में "घञ्" प्रत्यय हो, परन्तु प्रत्यय होने से सिद्ध हुआ शब्द पुल्लिङ्ग और किसी की संज्ञा हो, यह उक्त सूत्र का अर्थ है। जो शब्द जिस अर्थ में प्रत्यय होने से सिद्ध होता है उस को "तद्व्युत्पन्न" कहते हैं, जैसे भाव अर्थ में प्रत्यय होने से सिद्ध हुए शब्द को भावव्युत्पन्न, कर्म अर्थ में प्रत्यय होने से सिद्ध हुए शब्द को कर्मव्युत्पन्न और कर्ता अर्थ में प्रत्यय

श्री रस्तु

श्री कृष्णाय परमात्मने नमः ।

श्री भृगु स्मृतिः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

महर्षि भृगुमेकान्ते हिमवद्गिरिमूर्धनि [1]तपस्यन्तं महात्मानो [2]मोक्षधर्मंबुभुत्सवः ॥ १ ॥
बदरिकाद्याश्रमान् द्रष्टुं गच्छन्तो मार्गमध्यगम् । ददृशुस्ते तपोमूर्ति यात्राफलमिवागतम् ॥२॥
शिरोभिस्तं प्रणम्यादावुपविष्टास्तदाज्ञया । हेतुंचागमने पृष्टाः [3]प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ ३ ॥

हिमालय शिखर पर तपस्या करने वाले भृगु महर्षि को मोक्ष और धर्म के जिज्ञासु कुछ मुनि लोग बदरिकाश्रम जाते हुए मार्गमध्य में देखे और प्रणाम करके महर्षि भृगु के द्वारा पूछे जाने पर यहाँ आने का कारण बताने लगे ।

मुनय ऊचुः

भगवन्नृषिवरान् द्रष्टुमटन्तो गिरिकन्दरान् । तीर्थयात्रामिषेणाद्य देवसन्निधिमागताः ॥४॥
ब्रूहि नः श्रद्दधानेभ्यो लोकानुग्रहकाङ्क्षया । जगदुत्पत्तिसंहारौ भूतानामुद्भवं क्रमाद् ॥५॥
वर्णाश्रमस्वरूपं च तद्धर्मान् श्रुति सम्मतान् । कृतादियुगभेदेन कृपया वद विस्तरात् ॥६॥

हे भगवन् ! तपोनिष्ठ महर्षियों के दर्शनार्थ हम लोग तीर्थयात्रा के बहाने से निकले और पर्वत गुफाओं में उनको खोजते हुए आपके सन्निधि में आये जिससे हमारी यात्रा भी सफल हुई । लोकानुग्रही आप हमें जगत् और चराचर के उत्पत्ति और प्रलय और वर्णाश्रम स्वरूप और उनके धर्मों को देशकालानुसार बताने की कृपा कीजिए ।

देवान् देवैः प्रणम्यादौ गुरून् सर्वानपि क्रमात् । आवश्यकस्थले स्पष्टां व्याख्यां कुर्मो भृगुस्मृतेः । [1]तपस्यन्तमिति तपश्शब्दात् 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां [illegible] (पा० सू० ३।१।१५ , इति सूत्रेण क्यङि, तदन्तस्य धातुत्वेन "तपसः पर[illegible] वार्तिकेन तिपि" लटः शतृशानजावित्यादिना शतरि च कृते निष्पन्नं रूपम् । तपः कुर्व[illegible]मित्यर्थः । [2]मोक्षं धर्मं च बोद्धुमिच्छवः [3]उपचक्रमुरिति "यद्यपि प्रोपाभ्यां समर्थाभ्या" मिति पाणिनि सूत्रेणात्रात्मने पदमावश्य[illegible] तथाऽप्यार्षत्वादयमपि प्रयोगः साधुरेव ।

भृगुरुवाच

मुनयः शृणुतास्माभिर्वक्ष्यमाणमिदं क्रमात् । यदस्माकं गुरुः साक्षाद्भगवान् शास्त्रमब्रवीत् ७
पिताऽस्माकं मनुः पुत्रानुक्तवानिदमुत्तमम् । यद्भवद्भिर्वयं पृष्टा गृहार्थिभिरिहागतैः । ८
परस्माद्ब्रह्मणोऽनन्तान्निर्गुणादपि लीलाया । ब्रह्मविष्णुमहेशानाः स्वकीयैरपि धामभिः ९
प्रादुरासन् महात्मानो रजस्सत्वतमोगुणान् । प्राधान्येन वशीकृत्य सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे १०
प्राणिनां स्रक्ष्यमाणानां भाविभोगैकहेतुना । सृष्ट्यादावात्मनो व्योम ततो वायुस्ततोऽनलः ॥
अनलाधिष्ठितादात्मसकाशाज्जलमुद्गतम् । जलात्तथाविधाद्भूमिः भूम्यामोषधिजातयः १२
तेभ्यो नानाविधं धान्यं क्रिमिकीटादयस्तथा । प्रजायन्ते विलीयन्ते प्रत्यहंक्षुद्रजीविनः १३

हे मुनियों ! हमारे पिता जी मनु ने हमें जो धर्म शास्त्र बताया था उसीको मैं आपको बता रहा हूँ, आप श्रद्धा से सुनिये। परमात्मा की लीला से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, अपने-२ निवास स्थानों के सहित प्रकट हुए और जगत की सृष्टि स्थित्ति और विनाश के हेतु भूत रज सत्व और तमो गुणों को यथाक्रम धारण किये। पैदा होने वाले प्राणि कोटि के भावि भोगानुसार उसी परमात्मा से आकाश वायु तेज जल और पृथ्वी क्रम से उत्पन्न हुई हैं और पृथ्वी से नाना प्रकार की औषधियाँ और उनसे अन्न और अन्न से क्रिमि कीटादि क्षुद्र प्राणि उत्पन्न हुए हैं।

मनुष्यादीन् सिसृक्षुः सन्नादौ लोक पितामहः । असृजन्मनसा सृष्टेः सनकादीन् प्रवृद्धये १४
ते सिद्धमुनयो ब्रह्मध्यानमात्रपरायणाः । न सक्ताः प्रेरिताश्चापि प्रजोत्पादनकर्मणि १५

मनुष्यादि सृष्टि की इच्छा से ब्रह्मा ने सबसे पहले सनकादि सिद्ध मुनियों को संकल्प मात्र से उत्पन्न किया था किन्तु वे सदा ब्रह्मध्यान परायण हो कर सृष्टि के बढ़ाने को तत्पर नहीं हुए।

पुनरस्मान् ससर्जाजो मरीच्यादीनयोनिजान्। किन्तु तेभ्योऽपि नासीद्धि प्रजावृद्धिश्चिकीर्षिता
अप्रसन्नमनास्तेन चिरं ध्यात्वा प्रजापतिः । द्विधा व्यभजदात्मानं स्त्री पुंसाकृतितः प्रभुः ॥
यद्यज्जातिसिसृक्षाऽभूदस्य तज्जातिसूचकम् । स्त्रीपुंरूपं समाश्रित्य तत्तज्जन्तून् ससर्ज सः ॥
मिथो दाम्पत्यरूपेण तयोः सृष्टिश्च भूयसी । जाता देवमनुष्याणां पशुपक्ष्यादिजीविनाम् ।१८
[illegible] संज्ञा [illegible]न्यासन् मिथुनान्येकसङ्गमात् । अमोघवीर्ययोः स्त्रीपुंरूपयोश्च प्रजापतेः ॥

होने [illegible] फिर ब्रह्माने मरीच्यादि हम लोगों को अपने शरीरावयवों से पैदा किया [illegible]किन्तु इनसे भी उनकी अभीष्ट सृष्टि बढ़[illegible] नहीं थी। उससे ब्रह्मा जी असन्तुष्ट हुए और बहुत देर तक सोचकर अपना [illegible]रीर को स्त्री और पुरुष के रूप में विभाजित किया। जिन-२ जातियों [illegible]ष्टि करने का संकल्प ब्रह्मा जी

को हुआ उन-२ जाति के स्त्री पुरुष रूप धारण करके उन्होंने उन-२ जाति कीं सृष्टि की थी। ब्रह्माजी के उन दोनों शरीरों के संयोग से देव मनुष्य और पशु पक्ष आदि जीवों की सृष्टि हुई। सर्वाधिक शक्ति वाले ब्रह्माजी के उन दोनों शरीरों के एक ही संगम से एकैक जाति के बहुत सी स्त्री पुरुष द्वन्द्व उत्पन्न हुए हैं।

पृथग्व्यवहारसिद्धचर्थं सृज्यमानेषु जन्तुषु। भिन्नावयवसंस्थानैः जातिभेदमसूचयत् ॥२१॥
अन्यथा वैदिकाः स्मार्ता विधयः प्रतिषेधकाः। निरर्थका भवेयुस्ते जातिभेदधियं विना ।२२।
यत्राप्याकृतितो भेदो लक्ष्यते नैव देहिषु। तत्र नैसर्गिकैरात्मगुणैं र्भेदमसूचयत् ॥ २३ ॥
एवं ज्ञातेषु वेदोक्तपदार्थेषु प्रभेदतः। कर्माणि तन्निमित्तानि क्रियेरन्नञ्जसा जनैः ॥ २४ ॥

यह गाय यह मनुष्य और यह स्त्री यह पुरुष इत्यादि लोक व्यवहार के लिये ब्रह्मा ने उन-२ जीवों को भिन्न-२ अवयव भेद से सृष्टि की जिससे परस्पर जाति भेद सूचित हो और शास्त्रीय विधि और निषेध भी व्यर्थ न हो। जिनमें आकृति (अवयव संस्थान) से परस्पर भेद मालूम नहीं पड़ता और शास्त्रोक्त-कर्मों के लिये वह आवश्यक है ऐसे ब्राह्मंण क्षत्रियादि वर्णो में नैसर्गिक गुणों

"मरीच्यादीनयोनिजानिति (१६) इदमत्रावधेयं यदयोनिजा मानसी महर्षीणां सृष्टि वेंदे क्वापि न श्रूयते। वेदे तु तेषां महर्षीणां नामानि परं श्रूयन्ते। योनिजसृष्टिश्च श्रौता प्रत्यक्षदृष्ट-योनिजसृष्टिदृष्टान्तेनापि सैव "दृष्टानुसारिणी ह्यदृष्टपरिकल्पनेति न्याये-नानुमेया भवति। अतश्चायमत्र निष्कर्षो यन्मनुशतरूपाभ्यां मिथुनधर्मेणोत्पन्नेभ्य एव मर्त्येभ्यो वेदप्रसिद्धनामानि, इदानीं पुराणादिप्रसिद्ध-रामचन्द्रादिनामानीव, दत्तानीति। उक्तं खलु मनुस्मृतौ " सर्वेषांतु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" (१।२१) इति। ते च तपःप्रभावात्पश्चादृषयोऽपि जाताः। मानससृष्टिवचनं च तेषां प्रशंसार्थम्। यथा ब्राह्मणादिवर्णानां ब्रह्ममुखादिभ्यः, क्वचि दृगादिवेदेभ्य इव चोत्पत्तिः प्रशंसार्था तद्वत्। श्रूयते खलु "ऋग्भ्योजातं वैश्यं वर्णमाहुः यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः" (तै० ब्रा० ३।१२।९) इति। कैश्चिदुच्यते आदौ मानसी सृष्टिर्जाता। सा चाग्रिमसृष्टिवर्धनेऽसमर्था स्वकालपरिसमाप्तौ नष्टा ऽऽसीत्। ततो ब्रह्मा द्विधा भूत्वा मैथुनसृष्टिमकरोत्। सैव परम्परेदानी [illegible] इति। तदुक्तं ब्राह्मे "दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम्। वामे [illegible] स द्विधा भूतमकल्पयत्। ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसंभवा इति। ([illegible] एतत्पक्षेऽप्याधुनिकानां मुखजन्यत्वगर्वान[illegible]काशः। संन्यासविधौ च "मुखजानाम[illegible] धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणमित्याद्युक्तीना[illegible]ङ्गतिः। विष्णोर्लिङ्गधारणंनामदण्डकमण्डलुका-षायादि धारणम्।

से ही परस्पर भेद सूचित किया गया है। इस प्रकार कहीं आकृति से कहीं स्वाभाविकगुणों से प्राणियों में परस्पर भेद मालूम होने से लोग वैदिक और लौकिक कर्म भी कर सकते हैं।

तत्र नृजाति सृष्टौ तदर्धमस्य प्रजापतेः। शतरूपा तदन्यार्धं मनुश्चाभूत्ततस्तयोः॥ २५॥
मैथुनेन मिथोनृस्त्रीपुंसद्वन्द्वानि जज्ञिरे। जातांश्च शिक्षायामास दम्पती सन् स मैथुनम् २६
मैथुनं शिक्षिता जीवाः स्वीयाः संजग्मिरस्त्रियः। ततः क्रमेण मर्त्यानां सृष्टिरत्र प्रवर्धिता॥

मनुष्यजाति सृष्टि के लिये ब्रह्मा जी का शरीर स्त्री पुरुष रूप में विभक्त था उसमें स्त्री रूप अर्ध शतरूपा और पुरुष रूप अर्ध मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए और उनके संयोग से मनुष्य जाति के स्त्री पुरुष शरीर बहुत उत्पन्न हो गये। इस प्रकार स्त्रियों और पुरुषों को उत्पन्न करके उस दम्पती ने भविष्य सृष्टि के हेतुभूत मैथुन क्रिया को भी तत्काल उत्पन्न स्त्री पुरुषों को दिखाया था जिससे वे भी उसी प्रकार सृष्टि को वढ़ा सके।

उनमें कृतयुग पूर्ण होने तक ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण भेद न ही रहा किन्तु शुद्ध सात्विक स्वभाव वाले होने के कारण वे सब ब्राह्मण ही रहते थे।

इसी अभिप्राय से महाभारत में भी कहा गया है कि एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमा सीद्युधिष्ठीर शा० अं० १८९) हे युधिष्ठिर यह सारा विश्व पहले कृत-युग में एक ही वर्ण रहा था) एवं लिंगपुराण में भी है कि "अप्रवृत्तिः कृतयुगे

योनिज सृष्टौ बृहदारण्यकश्रुतिरपि प्रमाणम्। तथाहि "स इमाममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिद मर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव। तां समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त इति (ब्रा० ४, मं ३)

अर्थ—वह सृष्टिकर्ता, अपने शरीर को पति और पत्नी के रूप में दो भाग कर दिया। पुरुष रूप अर्धाकाश स्त्री के द्वारा पूर्ण होता है यह बात लोक प्रसिद्ध है। अतः वे भी अपने को दो भागों में मनु और शतरूपा के रूप [illegible] कर सङ्गम किये और उस एक ही सङ्गम से मानव जाति के स्त्री [illegible]क उत्पन्न हुए।

[illegible] शब्दार्थसम्प्रदायमिव मैथुनसृष्टिसम्प्र[illegible]यमपि स एवेश्वरो व्यक्तिभेदमाश्रित्य दर्शितवानिति भावः। व्यक्तिभेदमाश्रित्य श[illegible]र्थसम्प्रदायप्रवर्तकत्वं तस्य नैयायिकादिभिरिष्यतेऽत्राप्यग्रे वक्ष्यते च।

कर्मणोः शुभपापयोः। वर्णाश्रम व्यवस्था च न तदऽऽसीन्न संकरः" अ० ३९-१८ (कृतयुग में स्वर्गभोगेच्छा से यज्ञादि शुभ कर्म और पशुहिंसादि पाप कर्मो का आरम्भ ही नहीं हुआ और वर्णाश्रम व्यवस्था भी उस समय में नहीं रही) उसी प्रकार कृतयुग के चले जाने के बाद कालानुसार मनुष्यों में जब परस्पर रागद्वेषादिगुण उत्पन्न हो गये और ध्यानयोगादि में उनका चित्त स्थिर नहीं रहा था तब यज्ञादि वैदिक कर्मो के द्वारा उनको पवित्र करने के लिये तत्कालीन ऋषि मुनि लोग शमदमादि गुणों के आधार पर ब्राह्मण क्षत्रियादिवर्ण विभाग किए। पद्मपुराण के पातालखण्ड में लिखा है कि, "त्रेतायुगे त्रयीधर्मो ज्ञानवर्णव्यवस्थितिः। माधवे मासि सम्भूता तेन मे माधवः प्रियः" त्रेतायुग के वैशाखमास शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया में ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेदों के द्वारा प्रतिपादित यागादि कर्मो का आरम्भ हुआ और उनको करने के लिए ब्राह्मणादि वर्णों की व्यवस्था ज्ञान से (यहाँ ज्ञानपद शमदमादि आत्म गुण परक है , अर्थात् शमदमादि गुणों के द्वारा की गयी। यह बात इस स्मृति में भी आगे स्पष्ट की गयी है।

तेष्वग्रे ब्राह्मणाः केचित्क्षत्रिया गुणभेदतः। वैश्याः शूद्राश्च मुनयो जातास्तपो विशेषतः।२८।

उन में से कुछ लोग नैसर्गिक शमदमादि गुण वाले ब्राह्मण और शौर्य-धैर्यादि गुण वाले क्षत्रिय व्यापारिकस्वभाववाले वैश्य और मन्दबुद्धि और प्रमादी लोग शूद्र बने और हमेशा तपोनिष्ट वाले ऋषि मुनि समझे गए।

सृष्ट्वा नृजातिमेवं स तेषां संद्गतिबोधकम्। प्रोक्तवान् मानवं धर्मशास्त्रं तद्बोधनाय नः २९
युष्मान्वयं बोधयामो यूयं बोधयतापरान्। येन मानव जातीया भवेयुः सुखिनः सदा ३०

इस प्रकार मनुष्य जाति की सृष्टि करके मनु महाराज ने उनको पारमार्थिक बोध करने वाले एक धर्मशास्त्र बनाया और उसे वे हमको पढ़ाये जिसे मैं अभी आपको बता रहा हूँ और आप भी इसको लोगों में प्रचार कीजिये। (भृगुमहर्षि के द्वारा प्रचारित होने से इसका भृगु स्मृति नाम से प्रसिद्ध हो गयी है किन्तु इसका प्रणेता मनु थे। अतः यह वस्तुतः मनुस्मृति ही है। इस बातको यज्ञेश्वरसूरी मैथिल ने भी अपने उपोद्घात में स्पष्ट शब्दों से सूचित कि[illegible])

गवादिपशुसृष्टौ तौ धृत्वा स्त्रीपुंगवादिके। वपुषो सुषुवाते तत्तज्जाति मिथुन[illegible]
अण्डजानपि ब्रह्माण्डकर्ता तज्जातिधर्मतः। तत्तच्छरीरमादाय ससर्ज विविधान् हि तान् [illegible]

गाय बैल के शरीर धारण[illegible]र ब्रह्मा ने गो जाति और पक्षी और मत्स्य

आदि अण्डजों को भी उनकी मर्यादा के अनुसार दो-दो शरीर धारण करके उत्पन्न किया था। इसमें भी है बृहदारण्यक श्रुतिः प्रमाण "सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त। बडबेतराऽभवदश्ववृष इतरः गर्दभी-तरा गर्दभ इतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायत अजेतराऽभवद् बस्त इतरोऽविरितरा मेषस्तामितरस्तां समेवाभवत्ततोऽजायन्त, एवमेव यदिदं किञ्च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत"। (वह शतरूपा गाय हो गयी तो मनुने बैल हो गया। उन दोनों से गो जाति पैदा हो गयी। फिर वह घोड़ी बनी तो मनु घोड़ा बन गया और उनसे अश्वजाति उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार गधे भेड़ बकरे और पिपीलिका (चींटियाँ) तक पैदा हो गये हैं।

तथा देवासुरान् यक्षान्गन्धर्वानपि किन्नरान्। स तत्तज्जातिमर्यादामाश्रित्यैवासृजद्बहून् ३३
श्रुतिस्मृति पुराणोक्त्या प्रत्यक्षाद्यनुभवेन च। उपपन्नमिमं सृष्टिक्रमं नो गुरुरुक्तवान्।३४।
एतद्विरुद्धमुक्त्वा यः क्रमं वञ्चयतीतरान्। निपतेन्नरके घोरे स मूढः श्वपचाधमः ॥३५॥

ऐसा ही देव दानव और गन्धर्वादियों को भी ब्रह्मा ने तत्तदुत्पत्ति मर्यादा के अनुसार उत्पन्न किया था। जो सृष्टि ऊपर दिखाई गई है वह बृहदारण्य-कादिश्रुति मन्वादि स्मृति और कूर्म मार्कण्डेयादि पुराणों के अनुसार और वर्तमान सर्वजन प्रत्यक्ष सृष्टि के अनुरूप ही हमारे पिता जी ने बताया था।

ऊपर दर्शित सृष्टि से विरुद्ध सृष्टिक्रम (अर्थात् ब्रह्ममुखादि से वर्ण सृष्टि) को बताकर जो जनता को वञ्चित करता है, वह मूढ़ घोर नरक में पड़ जायगा।

पदार्थानेवमुत्पाद्य शब्दान् तद्वाचकानपि। वेदान् प्राक्कल्प संसिद्धान् स्मृत्वा लोकानुपादिशत् ॥
तत्रापि गुरुशिष्यादि व्यक्तिभेदमुपाश्रितः। ब्रह्मा शब्दार्थसङ्केतं ग्राहयामास मानवान् ३७

इस प्रकार वस्तुओं और तद्वाचक शब्दों की सृष्टि कर ब्रह्मा ने गुरुशिष्य रूप में दो शरीर धारण कर जनता को शब्दार्थक संकेत को भी ग्रहण करवाया था और पूर्व कल्प सिद्ध वेदों को स्मरण करके लोगों को पढ़ाया था।

प्राणिनो ब्रह्मसङ्कल्प प्रेरिताः सृष्टिवर्धने। संलग्ना व्यग्रचित्तेन स्वस्वजातिप्रवर्धने ॥३८॥
तेषां [illegible]युजाः केचित्केवलं शाकभोजिनः। तदन्ये मांसमेवाद्युः नित्यं व्यापाद्य जीविनः ॥
[illegible]यासन् मि[illegible]थमीक्षेरन् पिबेयुर्जलमोष्ठतः। येषामुभयतो दन्तास्ते शाकाहार भोजिनः ॥४०॥
ब्रह्म[illegible]जमेषाश्व गर्दभोष्ट्रादिजातयः। पत्रपुष्पफल-व्रीहिनानाधान्यादिभोजनाः ॥४१॥

इधर प्राणि वर्ग भी ब्रह्म संकल्प से प्रेरित होकर अपने-अपने जाति परिवार को बढ़ाने लगे। उनमें जो जरा[illegible] प्राणी हैं वे दो प्रकार के हैं कुछ

शाकाहारी और दूसरे मांसाहारी। जो प्राणि प्रकाश में रहने वाले वस्तु को ही देख सकते और ओंठों से जल पीते हैं और जिनके मुख में दन्त, ऊपर और नीचे भी क्रमबद्ध हैं वे सब ईश्वर सृष्टि में शाकाहारी हैं। मनुष्य गौ, हाथी, भेड़, बकरा, गधा और ऊँट इत्यादि जन्तु सब ईश्वर निर्मित शाकाहारी हैं और वे पत्र पुष्प फल और नाना प्रकार के धान्य खाते हैं।

आलोकमनपेक्ष्यापि ये पश्यन्ति चराचरम्। पिबन्ति जिह्वयातोयं दंष्ट्रिनश्च मुखे च ये॥
पत्सु तीक्ष्णनखा नक्तं चरास्ते मांसभोजिनः। अण्डजास्तूभयाहारा जलस्थलनिवासिनः॥
क्षुद्रप्राणिषु नास्त्येव नियमो भोजनादिषु। यस्मात्ते हि प्रजायन्ते तदेवाश्नन्ति नैजतः॥

जो प्राणी अन्धकार में भी वस्तु को देख सकते हैं और जिह्वा से जल पीते हैं और जिनके मुख में दो दो तीक्ष्ण शूलसदृश दन्त और पैरों में शान-दार नाखून रहते हैं और प्रायः रात्रि में ही बाहर घूमते हैं, वे सब ईश्वर निर्मित मांसाहारी है। अण्डज प्राणी सब, मांस और धान्यादि को भी खाते हैं। चींटियाँ और तत्सदृश छोटे जीवों में आहार का नियम नहीं रहता और वे जिसमें पैदा होते हैं उसी को ही प्रायः खाते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानामाहारं सूर्यतेजसा। पाचयित्वा ददात्यात्मज्ञानवैराग्यपुष्टिदम्॥४५॥
तस्माच्चमानवैर्मांसमत्स्य-स्पर्शोऽपि सर्वदा। न कर्तव्यः शृगालादिप्राणिनां तद्धि निर्मितम्॥

परमेश्वर सब जीवों के लिये भोजन सूर्यरश्मि से पका कर देते हैं और वही प्रकृति सिद्ध भोजन सब जीवों के लिये आयुरारोग्यादि और ज्ञानवैराग्यादि देनेवाला है। यदि आदमी उस ईश्वरदत्त आहार को फिर अग्नि से भी पका कर खाता है तो वह ईश्वरीय नियम के विरुद्ध हो जाता है। अतः वह जल्दी नानाविध रोगों का आश्रय हो जाता है। मनुष्येतर प्राणी सब उस प्रकृति सिद्ध भोजन खाते हैं। अतएव उनमें इतना रोग नहीं है जितना मनुष्य शरीर में है। जब तक आदमी ईश्वर नियमों को समझ कर आहार विहारादि में तदनुसार चलता था, तब तक उसमें अनावश्यक दुर्व्यसनों (बीड़ी, सिगरेट पींना और तम्बाकू खाना) का संकल्प मात्र भी नहीं आता था। आग से अन्न को पकाकर खाना प्राणिमात्र के लिये नियम विरुद्ध है मछली मांस तो मनुष्य जाति का आहार हो नहीं है। यह बात ऊपर के ४०-४२ श्लोकों [illegible] स्पष्ट हो जाता हैं। अतः उसे लोग छोड़ दें।

अवतर्णिका-२५ श्लोक से ३२ श्लोक तक श्रुति प्रमाणादि सिद्ध [illegible] सृष्टि क्रम भृगु के द्वारा बताया गया था उससे विपरीत क्रम भी संहिता और

ब्राह्मणादि ग्रन्थों में आपाततः मालूम पड़ता है किन्तु उसका तात्पर्य विषयान्तर में ही है न कि सृष्टि बताने में यही विषय आगे के श्लोकों से बताया जाता है।

प्रजापति-मुखादिभ्यः श्रुता सृष्टिः श्रुतौ क्वचित्। साऽन्यतात्पर्यतः प्रोक्ता न तु मुख्यविवक्षया
विधिर्वा प्रतिषेधो वा यत्र यत्र श्रुतौ श्रुतः। स्तुति निन्दा प्रबोधार्थं गाथाः स्युः तत्र कल्पिताः
बालकानां प्रवृत्त्यर्थं निवृत्त्यर्थमसत्पथात्। श्राव्यन्तेऽपि यथाऽसत्यगाथाः पित्रादिभिस्तथा ॥
अज्ञानिनः प्रवर्तेरन्नान्यथा श्रौतकर्मसु। इत्यालोच्य श्रुतिर्मर्त्यान् श्रावयत्यप्यसत्कथाः ५०
न चैतन्मात्रतो हानिराप्तत्वस्येष्यते बुधैः। आप्तत्वादेव तादृग्भिर्योजयन्ति हिते नरान् ५१

ब्रह्मा के मुखादि से भी ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति वेद में (तैत्ति० सं० ७ काण्ड और ताण्ड्य — ब्राह्मण में) जो सुनी जाती है उसका तात्पर्य उत्पत्ति बताने में नहीं किन्तु विषयान्तर में ही है। विधि या निषेद वेद में जहाँ २ सुने जाते हैं, वहाँ स्तुति या निन्दा प्रकट करने के लिये कल्पित कथायें भी सुनी जाती है। जैसे माता या पिता अपने लड़कों को असत्य कथायें सुना कर भी उनको अच्छे कामों में प्रवृत्त और बुरे कामों से निवृत्त करवाते हैं, वैसा ही श्रुति माता भी लोगों को बच्चे समझकर असत्य गाथाओं के द्वारा उनको कर्तव्य कामों में प्रवृत्त और अनुचित कामों से निवृत्त करवाती है। ऐसे स्थलों पर असत्य गाथायें सुनाने पर भी जैसे माता पितरों में आप्तत्व की हानि नहीं होती है वैसा ही श्रुतिशास्त्रों में आप्तत्व की हानि नहीं है।

जैसे कोई छोटा लड़का पाठशाला में जाना नहीं चाहता हो और घर में चिल्लाता रहता हो, तो घर के बड़े लोग उससे कहेंगे कि "आज पाठशाला में लड़कों को मिठाई बाँटी जा रही है। तुम भी जल्दी जाओ" और बगल में रहने वाला भद्र पुरुष भी कहेगा कि "हाँ हाँ हमने भी देखा है"। इतना सुनकर वह लड़का विद्यालय में तुरन्त चला जायगा और यदि ऐसा न कहकर यदि वास्तविक बात्त कहा जाय कि तुम पाठशाला जाकर पढ़ोगे तो विद्या आयेगी और उससे तुम्हारी उन्नति होगी, यह तो लड़के के समझ में नहीं आयेगा और वह पाठशाला में जाने को तैयार भी नहीं होगा। अतः उसको विद्यालय में भेजने के लिये झूठी वार्ता सुनाना ही सुलभ उपाय है। वैसे ही प्र[illegible] में अज्ञानी लोगों को वेद विदित कर्मों में प्रवृत्त करवाने और निषिद्ध [illegible] निवृत्त करवाने के लिये वेदमाता भी असत्य कथा वार्तायें बताती है।

[illegible] मुख्यप्राणोपासनायां प्रवृत्त्यर्थं बृहदार[illegible]कोपनिषदि (६।१।७) श्रूयमाण इन्द्रियाणामसत्यकलह उदाहरणम्। असंसृष्टहोमप्रक[illegible] प्रातःकालीनाग्निहोत्रे अग्निदेवता-

ब्रह्माजी के मुखादि से ब्राह्मणादि चार वर्ण उत्पन्न हैं। इन (तै० सं० ७ काण्ड १ प० और ताण्डच ब्रा० ६। ।१) वाक्यों का तात्पर्य उत्पत्ति में नहीं किन्तु दूसरे विषय में है ऐसा पहले कहा गया अब वह विषय आगे भी बताया जाता है।

ब्राह्मणोऽध्यापयन्नित्यं तदावृत्तिक्रियाश्रितः। जायते मुखतः सेति मुखाज्जात इतीर्यते।५२।
श्रौत कर्मोपयुक्तानामर्थानामिह मुख्यताम् श्रुत्या द्योतयितुं तेषां मुखजन्यत्वमुच्यते ॥५३॥

वेदों का अध्ययन और उसका बार २ अध्यापन द्वारा आवृत्ति करने से और उसके अनुसार आचरण करने से आदमी, ब्राह्मण बनता है और वह अध्ययनादि क्रिया मुख से ही की जाती है। अतः ब्राह्मणत्व हेतु भूत क्रिया की उत्पत्ति मुख से होने का कारण ब्राह्मण ही मुख से उत्पन्न था ऐसा कहा गया है। मनु रूप ब्रह्मा ने पूर्वोक्त २५-२६ श्लोकों के अनुसार सृष्टि के आदि में मनुष्यों को उत्पन्न करके सबके सामने वेद सुनाया था और उनमें से जो २ व्यक्ति उस वेद को तुरन्त धारण कर लिये और ब्रह्माजी को सुनाये थे उनको ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान समय में ब्राह्मण शब्द से बुलाया था। इसका विवरण आगे मूल श्लोकों में ही किया जाता है। वेद विहित कर्मोपयोगी वस्तुओं का मुख्यत्व समझाने के अभिप्राय से वेद ने अग्नि और बकरा आदि को मुख से उत्पन्न बताया है। इस गाँव में यह मुख्य इत्यादि स्थलों में भी मुख्य शब्द का विवरण ऐसा कहा जाता है कि मुखाज्जातो मुख्यः।

परित्यागार्थमसत्यवार्ता श्रूयते "उद्यन्तं वावादित्यमग्निरनुसमारोहति। तस्माद्धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे" (तै. ब्रा. २।१।३।९) इति। अत्र च मन्त्रः "सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्य स्वाहेति"। एव सायं होमे सूर्यदेवता-परित्यागार्थमप्यसत्यवार्ता श्रूयते" अग्निं वावादित्यः सायं प्रविशति तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे, उभे हि तेजसी सम्पद्येते" इति तत्रैव। अत्र मन्त्रश्च "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति। संसृष्टदेवताकहोमे च" अग्नि-र्ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहेति सायं, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति प्रातः"। तदेतत्सर्वं बोधायनश्रौतसूत्रे (३।५।६) तदन्यत्रापि च दर्शितम्। यथा मातापितरौ स्वतनयान् सत्पथे प्रवर्तयितुमसत्पथाच्च निवर्तयितुं मसत्यवार्ताः श्रावयन्ति तथा श्रुतिरपि जनान् बालकान् मत्वा तान् धर्माधर्मयोः प्रवर्तयितुं निवर्तयितुं चासत्यगा[illegible]-यति। मुखादितो वर्णोत्पत्तिवार्ताऽपि एतादृशी एव। न चैतावता पित्रोः श्रुते[illegible] व्याकोपः। एषैव वैदिकी मर्यादा पश्चात् स्मृतिषु पुराणेतिहासादिष्वपि च तद्व्याख्यातृ-भिराश्रिता।

क्षत्रियो जायते मुष्टियुद्धाभ्यासक्रियादिना । सा क्रिया बाहुजन्येति तस्योक्ता बाहुजन्यता ॥
क्षत्रियादौ वलिष्ठत्वं दृश्यते श्रूयते च यत् । तच्च बाह्वाश्रितं तस्माद्‌बाहुजत्वेन ते श्रुताः ॥
वाणिज्यादिक्रियासूपविशंस्तिष्ठन् प्रजायते । वैश्यस्तदूरुसामर्थ्यादिति तस्योरुजन्यता ५६
प्रधावन् परकार्यार्थं शूद्रोऽश्वश्च प्रजीवति । प्रधावनं च पादाभ्यामिति तत्पादजन्यता ५७

मुष्टि युद्धादि का ठीक अभ्यास करने से क्षत्रिय बनाता है और वह क्रिया बाहुजन्य है। अतः वेद क्षत्रिय को बाहुजन्य बताता है और क्षत्रिय और भेड़ इत्यादि में बल देखा जाता है और वह बाहुओं में रहता है। इस हेतु से भी उनको बाहुजन्य बताया है।

वाणिज्यादि में बार-२ उठने और बैठने से वैश्य बनता है। अर्थात् ग्राहकों के आने पर वैश्य बार-२ उठकर घर से चीजें बाहर लाता और बैठकर तौलता है। यह क्रिया (बार-२ बैठना उठना) ऊरूबल साध्य क्रिया से तैयार हो जाने का कारण वैश्य को वेद ऊरुजन्य कहा है।

दूसरों की सेवा के लिए दौड़ते हुए शूद्र और अश्व अपने जीवन निर्वाह करते हैं। ऐसा दौड़ना पादों से ही होता है। अतएवांग्रेजो में ऐसा आदमी रन्नर (Runner) कहा जाता है। अतः उनको वेदने पादजन्य बताया है।

मुख्यतामिति ५३ मुख्यतां द्योतयितुं मुखजन्यत्वमुक्तमितिभाव. । "लोकानां च विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्" इति मनुस्मृति (१।३१) श्लोकस्य मेधातिथिभाष्येऽपि मुखादितो वर्णोत्पत्ति बोधक शब्दस्य निरुक्तार्थ एव दर्शितः । तथाहि तत्रस्थं भाष्यम् "परमार्थतः स्तुतिरेषा । वर्णानामुत्कर्षापकर्षप्रदर्शनार्थम् । सर्वेषां भूतानां प्रजापतिः श्रेष्ठः । तस्यापि सर्वेषामङ्गानां मुखं (श्रेष्ठं) ब्राह्मणोऽपि सर्वेषां वर्णानां प्रशस्यतमः (श्रेष्ठः) । एतेन सामान्येन ब्रह्ममुखादुत्पन्न इत्युच्यते । मुखकर्माध्यापनाद्यतिशयाद्वा मुखत इत्युच्ते । क्षत्रियस्यापि कर्म युद्धं वैश्यस्योरुकर्म पशुरूपं रक्षतो गोभिश्चरन्तोभिर्भ्रमणं स्थल-पथवारीपथादिषु वाणिज्यायै गमनम् । शूद्रस्य पादकर्म शुश्रूषेति ।" एतेन सामान्येन बाह्वाद्यवयवतः क्षत्रयादिवर्ण उत्पन्न इति पूर्वोक्त न्यायः अत्राप्यध्याहार्यः । एतेनेदमपि स्पष्टमत्र विज्ञायते यत्पूर्वपूर्वो-वर्ण उत्तारोत्तरवर्णापेक्षया श्रेष्ठ इत्यत्र कारणं तत्तत्स्वाभाविकं कर्मैव न तु श्रेष्ठावयवजन्यत्वमिति ।

ब्रह्मा... ननु ब्रह्ममुखादितः ब्राह्मणादिवर्णोत्पत्तिबोधकस्मार्त-पौराणिकैतिहासिकवाक्यानां तैत्तिरीयसप्तमकाण्ड-प्रथमप्रपाठक-प्रथमानुवाक एव मूलं संभवतीति कुतोऽर्थवादत्वमुच्यते इति चेन्न । तत्र श्रूयमाणमुखाद्युत्पत्तेरप्यर्थवादत्वात् । तत्र हि प्रजापतिमुखवः

त्रिवृत्स्तोमाग्निदेवता, गायत्रीछन्दो-रथन्तरसाम-ब्राह्मणाजानां, तद्बाहुभ्यां पञ्चदशस्तोमेन्द्रदेवतात्रिष्टुप्छन्दो-वृहत्सामराजन्यावीनां, मध्यतः (ऊरुभ्यां) सप्तदशस्तोमविश्वेदेवदेवताजगतीच्छन्दो-वैरूपसाम-वैश्यगवां, पत्तः (पादाभ्यां) एकविंशस्तोमानुष्टप्छन्दो वैराजमासशूद्राश्वानां च उत्पत्तिः निरमिमीतशब्देनोक्ता । तत्रापौरुषेयवेदभागानां स्तोमच्छन्दस्साम्नामुत्पत्तिः तत्तदङ्गेभ्योऽसङ्गतेति तन्मध्य-पठित-वर्णोत्पत्तेरप्यसङ्गतत्वादर्थवादत्वमेवेष्यते । एतादृशोत्पत्तेरभिप्रायस्तत्तत्प्रकरणगतैरेवार्थवादवाक्यैः सप्रमाणमस्माभिः जात्युपाधिविवेके प्रदर्शितः । एतेन तैत्तिरीयसप्तमकाण्डोक्तोत्पत्ति प्रमाणीकृत्य सर्ववेदगतपुरुषसूक्तेष्वपि सायणेन मुखादितो या वर्णोत्पत्तिरङ्गीकृता साऽपि समाहिता । सायणस्तु अर्ध पूर्वमीमांसकोऽर्धमद्वैतवेदान्ती च । तदुभयमतेऽपि मुखबहूरूपादेभ्यो वेदभागानामुत्पत्तिरनुपपन्नैव । जगदन्तर्गतपदार्थमात्रस्यैवादावुत्पत्ति नाङ्गीकरोति मीमांसकः, सुतरां च वेदानां । वेदान्तिनस्तु ब्रह्मनिश्वासात्मकत्वमेव वेदानामङ्गीकुर्वन्ति । तस्मान्मुखादितः श्रुता वर्णोत्पत्तिरर्थवाद एव । अतएवैतच्छ्रुत्यभिप्रायः श्रीमद्भागवतश्लोकेन इत्थं स्पष्टीकृतः । 'ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरुरन्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः" (२।७।३७) इत्यादिना । भागवतसुबोधिनी टीकाकर्त्रा वल्लभाचार्येण सुबोधिनी प्रकाशकर्त्रा गोस्वामिपुरुषोत्तमचरणेन च एतच्छ्लोकव्याख्यानावसरे प्रजापतिमुखादितो वर्णोत्पत्तिः खण्डिता । ननु तत्रैव "ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया" इति कर्दमं प्रति मनुरुक्त्वाऽग्रे कथयति "तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात्" (३ २२।२-३) इति । तत्र स्पष्टैवमुखोत्पत्तिरितिचेन्न । तैत्तिरीयश्रुतिप्रोक्तमुखोत्पत्त्यभिप्रायस्यैवात्रानूदितत्वात् । तैत्तिरीयश्रुत्यभिप्रायं जानन्तो जनाः अस्मत्पुराणश्लोकानामपि तादृशमेवाभिप्रायं जानीयुरिति बुद्धयाऽत्रान्यत्रापि चैतादृशश्लोकानां प्रणयनं कृतम् न तूत्पत्त्यभिप्रायेण । उत्पत्त्यभिप्राये चात्रैव व्यभिचारो दृश्यते । यतः कर्दमस्य जन्म ब्रह्मच्छायातः "छायातःकर्दमो जज्ञेदेवहूत्याःपतिः प्रभुः" (३।१२।२७) इत्यादिनोक्तं न तु मुखतः । मनुशतरूपे च ब्रह्मणो द्वैधीभाव एव । तदुक्तम् "कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते । यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुःस्वायंभुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मन" (३।१२।५३) इति । सक्षाद्ब्रह्मपरिणामरूपेमनौ क्षत्रियवंशोत्पादकत्वेन हेतुना क्षत्रियत्वमङ्गीकृतं न तु वस्तुतस्तत्रापि जातिवाद्यभिमतक्षत्रियत्वम् । वर्णानां मुखबाह्वादिस्थानीयत्वपक्षे चैतदन्यच्च सर्वं समञ्जसमेव । ब्रह्मपुराणे च स्पष्टमेवोक्तं [illegible]दिरूपत्वम् । तद्यथा "ब्रह्म वक्त्रं भुजो क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः । पादौ शू[illegible]ने विक्रमेण क्रमेण च (अं० ५६।२२) इति । क्रमेण यथाक्रमम्, विक्रमेण [illegible]" तस्माद्ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति [illegible]हुभ्यां राजन्यः" इत्यादिश्रुतेः । मुखवीर्यत्वं ब्राह्मणस्य बाहुवीर्यत्वं च क्षत्रिणस्य [illegible]वीर्यत्वं वैश्यानां पादवीर्यत्वं शूद्राणामुपस्थवीर्यत्वं

ऊपर के श्लो० ५२ से ५७ तक का ही विवरण प्रकारान्तर से नीचे श्लोकों से बताया जाता है।

यज्ञसंसिद्धये चातुर्वर्ण्यविनिर्निनीषया । तद्धेतुगुण-निर्वर्त्यकर्माण्यादर्शयत्प्रभुः ॥ ५८ ॥
मानवान् जोविकावृत्तीः ब्रह्मा ग्राहयितुंपुरा । व्यक्तिभेदं समाश्रित्य वेदानध्यापयत्प्रभुः ।५९।
मुष्टियुद्धादिकं भूमेः कर्षणं पशुपालनम् । वाणिज्यं लोकसेवार्थं पभ्द्यां धावनमप्यजः ।६०।
जनान् प्रदर्शयामास सर्वानिप्यविशेषतः । शिष्यशिक्षकभेदेन देहद्वयमुपाश्रितः ॥ ६१ ॥
तत्र प्राक्तनसंस्काराद् यस्मिन् कर्मणि येऽभवन् । निपुणास्तेन तेषां स तत्तद्वर्णमबोधयत् ॥
एवं वर्णान्विनिश्चित्य बार्हस्पत्यसवादिषु । श्रौतेषु ब्राह्मणादीन् स योजयामास कर्मसु ६३

वेदोक्त यज्ञादि कर्मों को करवाने के लिए जब ब्रह्मा जी चारों वर्णों का निर्णय करना चाहते थे तब उन्होंने सब लोगों के सामने वेदों का अध्ययन और अध्यापन मुष्टियुद्ध और अस्त्र शस्त्र चलाना, हल चलाना, व्यापार और पशुपालन करना और लोकसेवार्थ पैरों से दौड़ना इत्यादि प्रदर्शित किया था और पूर्व संस्कार के कारण जो जो व्यक्ति जिन-जिन कर्मों को ठीक अभ्यास कर लिए थे उनको ब्रह्मा ने उन गुणों के द्वारा ब्राह्मणत्वादि वर्ण बताया था, अर्थात् जो व्यक्ति अध्यापन और याजनादि बौद्धिक कर्मों में कुशल रहा था, उसको ब्राह्मण नाम से, जो मुष्टियुद्धादि में कुशल रहा उसको क्षत्रिय नाम से क्षत्रियोचितयाग में, जो वाणिज्य धन-धान्य संग्रह में कुशल रहा उसको वैश्य नाम से वैश्यस्तोमादि में और जो दौड़ कर परसेवादि करने में कुशल रहा था उसको शूद्र नाम से यज्ञसाधन चीजों को एकत्रित करने में नियुक्त किया था। अतः आज भी उसी ईश्वर स्वीकृत रीति के अनुसार वर्णों को

स्त्रीणां च शतपथब्राह्मणेदर्शितम् । एतदभिप्रायेणैव महाभारतेऽपि मुखादिरूपत्वं स्पष्टमुक्तम् । तद्यथा "ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः । पादौ यस्याश्रिताः शुद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः" शान्ति ४७।७ .) इति । ब्रह्म कृत्स्नं क्षत्रं च कृत्स्नं यस्य मुखं भुजावित्यन्वयः। सृष्ट्यादितोऽद्यपर्यन्तमुत्पन्नाः ये वस्तुतः शास्त्रीयब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ते सर्वे इत्यर्थः । एवं विशः शूद्रा इति च बहुवचनान्तप्रयोगेण सर्वे शास्त्रीयवैश्या तादृश शूद्राश्च सर्वे इत्यर्थो लभ्यते । तथाच शास्त्रसिद्धा ये ब्राह्मणादयो वर्णाः सृष्ट्यादितोऽद्यावत् [illegible]त्पन्ना अग्रे उत्पत्स्यमानाश्च ते सर्वे जगदाकारविराट्पुरुषस्य मुखबाह्वादिस्थानीय[illegible]र्थो भवति । मुखादित उत्पत्त्य[illegible]कारे चात्रासङ्गतिरेव स्यात् । यतः सृष्ट्यादौ मुखादितो योनितो वाऽग्रिमसृष्टिकारणीभूता एव [illegible] व्यक्तिरेवोत्पन्ना स्यान्नतु सर्वाः । मुखादिस्थानीयत्वपक्षे च तस्य सहस्रशीर्षत्वादिकमिव [illegible]नन्तब्राह्मणादिव्यक्तिमुखत्वादिक मपि संभवतीति नात्रासंगतिः । तस्मादुक्तं मूले मुख्यतां [illegible]पयितुं तेषां मुखजन्यत्वमुक्तमिति ।

समझ कर तदुचित कर्म करना आवश्यक है नहीं तो अनर्थ हो जायगा, इस अभिप्राय से आगे के श्लोक कह रहे हैं।

शमादिगुण वृत्त्यर्थकर्मभिर्वर्ण निश्चयम्। कृत्वा वैदिकहोमादौ तत्तद्वर्णप्रवर्ततताम् ॥ ६४ ॥
वृत्त्यर्थकर्मभिः सम्यग् वर्णश्च विदितो भवेत्। ततः कर्मसु श्रौतेषु प्रवृत्तिः सफला नृणाम् ॥
अज्ञानान्मोहहेतोर्वा स्वीयवंशाभिमानतः। यो ह्यन्यथा प्रवर्तेतस घोरनरके पतेत् ॥ ६६ ॥
यो वा प्रवर्तयेत्स्वीय-पुत्रानतद्गुणानपि। श्रौतकर्मसु पापात्मा रौरवे स पतिष्यति ॥६७॥
यदा चैतादृशो नृणां दुष्प्रवृत्तिर्भविष्यति। तत कलियुगं ज्ञेयं सर्वधर्मप्रणाशकम्॥ ६८ ॥

मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार अध्यापन याजन, और वाणिज्यादि काम भुक्ति के लिये करता ही है। उन कर्मों से ही उसके आत्मनिष्ठ शमदमादि गुणों का भी ज्ञान, उसको और दूसरों को भी हो जाता है। उनसे स्वनिष्ठ ब्राह्मण-त्वादि का निर्णय करके वह ब्राह्मणोचित वैदिक कर्म करें और क्षत्रियत्वादि को भी वह ऐसा ही समझकर तदुचित कर्मों को करें। अज्ञान या अभिमान से जो अपने पूर्वजों के वर्ण अपने में आरोप करके पूर्वोक्त विषय के विरुद्ध आचरण करता है वह घोर नरक में पड़ जायगा। जो पुरुष शमदमादि गुण रहित अपने पुत्रों को भी जाति भ्रम से ब्राह्मण समझकर, ब्राह्मण कर्मों में प्रवेश करवाता है वह रौरव नामक नरक में पड़ जायगा। जब ऐसी दुष्प्रवृत्ति लोगों में होगी अर्थात् शमादिगुण रहित भी अपने को ब्राह्मण पुत्र समझ कर जाति भ्रम से ब्राह्मणादि वर्ण विहित कर्मों में प्रवृत्त होगा तभी से सर्वधर्म-विनाशक कलियुग का आरम्भ समझना चाहिये।

तत्तत्काले निवसतां जनानामुत्तमाधम-भावेनैव तत्तत्कालस्याप्युत्तमाधमयुगत्व मिष्यते न तु स्वतः काले कश्चिन भेदः। कालप्रवर्तकाः सूर्यादयो ग्रहाः पृथिव्यप्तेजो वाय्वादयः शीतोष्णादि ऋतुलिङ्गानि च तान्येवेदानीमपि सन्ति यानि सृष्ट्यदावासन्। उत्तरोत्तरकाले जनानामाधिक्येन परस्परसङ्घर्षस्तेन तज्जनेषूत्तमगुणनाशोऽधमगुणानां प्रवेशश्च जायत इति प्रत्यक्षानुभवसिद्धम्। कलियुगे चैतेषां सङ्घर्षाणामाधिक्यं मनुष्येष्वे वावान्तरासंख्येयाऽप्रामाणिकजातिभेदा मतभेदास्तदनुसारेण यथेच्छं शास्त्रप्रणयनं च जायते। जनाश्चोदरपोषणतात्पर्येणैव प्रायः पारमार्थिकवचांसि ब्रुवते क्वचिच्चौर्यप्राणि-हत्यादिकं च कुर्वत इति एतदेव कालस्य कलियुगत्वम्। कृतादि युगेषु जनै[illegible]त् आवश्यकाहारसौलभ्येन जीविकाचिन्ताऽभावाच्च ते सत्यनिष्ठाः मिथ्याभेदप्र[illegible]-द्वेषादि शून्याश्चासन्। यदा पुनरीश्वरे[illegible]या कलिपुरुषाणां विनाशे सति दर्शितभेदा[illegible]-मपि नाशस्तदाऽयमेव कालः क्रमशः कृतयुगत्वेन परिणंस्यति। अतो जनप्रवृत्तेरेव काल-कारणत्वं दर्शितं स्मृतौ।

द्वितीयोऽध्यायः

श्रुतिस्मृतिभिरुक्तो यः सदा सद्भिश्च सेवितः। स्वात्मप्रीतिकरश्चापि स धर्मो लोकसम्मतः १
नित्यो नैमित्तिकः काम्यश्चेति सोऽपित्रिधा मतः। काम्यो धर्मो गृहस्थानां सर्वेषामितरौ मतौ।
नित्यो ह्यात्मविशुद्धयर्थं कर्तव्यत्वेन चोदितः। शास्त्रेण प्रत्यहं सन्ध्योपासनादिकमुच्यते ३
नैमित्तिकश्च कालादि निमित्ते सति चोदितः। सूर्यचन्द्रोपरागादौ स्नानदानादिकं मतम् ४
काम्यो धर्मो न प्रशस्तो जन्ममृत्युप्रदायकः। ईश्वरार्पणबुद्धया चेत्क्रियते सोऽपि मोक्षदः ५
संसारिभिरयं धर्मः सम्यगाचरितो बुधैः। चित्तशुद्धिप्रणाड्यैव भुक्तिमुक्ती प्रसादयेत् ६
तस्मात्तदर्थिभिर्नित्यं ज्ञातव्यः श्रुतिगोचरः। धर्मः सेव्यो गृस्थैस्तै रैहिकामुष्मिकार्थिभिः ७

श्रुति और स्मृति के द्वारा जो प्रतिपादित और सत्पुरुषों के द्वारा अनुमोदित है वही धर्म लोकहित होता है। वह धर्म नित्य नैमित्तिक और काम्य भेद से तीन प्रकार का है। काम्य धर्म गृहस्थ मात्र के लिये हैं और नित्य और नैमित्तिक कर्म, सब के लिये हैं। सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म करने से चित्तशुद्धि होती है। सूर्यचन्द्र ग्रहणादि के समय में स्नानदानादि करना नैमित्तिक है। काम्य कर्म, पुनर्जन्मादि का कारण है। ईश्वरार्पण बुद्धि से करने पर वह भी चित्त-शुद्धि के द्वारा भुक्ति और मुक्ति का हेतु होता है। अतः इहपर सुख चाहने वाले गृहस्थ उसे अवश्य समझे और करें।

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः संयतात्मरुचिस्तथा। सर्वधर्मप्रमाणं स्याद्दुर्बलं चोत्तरोत्तरम् ८
लोभमूलानि वाक्यानि यानि स्वार्थपरायणैः। स्वस्वकीयजनोत्कर्ष-सम्पिपादयिषावशात्९
प्रवेक्ष्यन्ते श्रुतिस्मृत्योरितिहास-पुराणयोः। तानि तन्मूलकाचाराः शिष्टानामपि सर्वथा॥
धर्ममात्रेऽप्रमाणानि तस्मात्त्याज्यानि मानवैः। बुद्धिमद्भिः सदा सर्व-श्रेयोऽर्थिभिरवञ्चकैः॥

उक्त तीन प्रकार के धर्मों में श्रुति (वेद) स्मृति सदाचार और सयमी पुरुषों की आत्मरुचि भी प्रमाण होते हैं और उनमें पूर्व पूर्व प्रमाण से उत्तरोत्तर प्रमाण दुर्बल माना जाता है। स्वार्थ परायणों के द्वारा पूजा सन्मानादि के लोभ से, जो २ श्लोक बनाये जाते और श्रुतिस्मृत्यादि में मिलाये जाते है, वे सब अप्रमाण हैं। शिष्टों काआचार भी लोभमूलक होगा तो वह भी अप्रमाण है। अतः उन सब को छोड़ देना चाहिये।

[illegible] गुर्बलं चोत्तरोत्तरमिति (९) यत्तु [illegible]मान मनुस्मृतौ दृश्यते "वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्" (२।१२) इति, तत्र साक्षादिति कथनमसङ्गतम्। तत्र लक्षण[illegible]ब्दस्य प्रमाणार्थकत्वेन दर्शितचतुर्विधप्रमाणानां च स्वपूर्वपूर्वप्रमाणकल्पकत्वेनैव प्र[illegible]ाङ्गीकारात्। दर्शितं चैतन्मी-

तानि प्रायो मानवेषु जन्मजात्युच्चनीचताः । बोधयन्त्येव केषांचित्सेव्यसेवकतेस्वतः ॥१२॥
तानि सस्ये तृणानीव तण्डुलेषु च शर्कराः । बहिर्निष्कास्य गृह्यन्तामृषिवाक्यानि सज्जनैः ॥
बाहुल्येन कलेरादौ कल्प्यन्ते तानि वञ्चकैः । धूर्तैः राज्ञो वशीकृत्य प्रवोध्यन्ते खलैर्नृपु ॥१४॥

वे कल्पित वाक्य प्रायः जनता में जन्म से उच्च नीच भावों का और सेव्यसेवक भावों का बोधन करने वाले होते हैं। अतः उन सबको, फसलों में से घास की तरह और चावलों में से कंकड़ की तरह बाहर निकाल कर असल महर्षिवाक्यों को लेना चाहिये। लोभमूलक वाक्य अधिक संख्या में कलियुग के आदि में ही कल्पित किये जाते हैं और धूर्तों के द्वारा प्रचारित किये जाते हैं।

येषामीश्वर वेदादौ भक्तिः श्रद्धा च वर्तते । तेषामेवाधिकारोऽत्र सर्वदेशनिवासिनाम् ॥
नास्ति क्वापि स्वतो दोषः पृथिव्यां सर्वमातरि । किन्तु पापकृतामेव हृदये वर्तते ह्यसौ ॥
तादृग्दुर्जनबाहुल्य-निवासाद्बहुकालतः । देशेऽप्यारोप्यते दोषो मानवैर्मन्दबुद्धिभिः ।
तादृशानामभावे हि देशः सर्वोऽपि शोभनः । पूर्वं दुर्जनसंसर्गदूषितोऽपि ततः परम् ॥

मांसादर्शने प्रथमतृतीयपादे । "श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानामुत्तरोत्तरं पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति यदुक्तं स न्यायोऽत्रापि प्रवर्तत एव। लोभमूलानीति (९) तदुक्तं देवीभागवते "पण्डिताः स्वोदरार्थं वै पाखण्डानि पृथक् पृथक्। प्रवर्तयन्ति कलिना प्रेरिता मन्दचेतसः" कलावस्मिन् महाभागा नानाभेदाः समुत्थिताः। नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथंचन। (१।८।३-४) इति। अतएतादृशं सर्वं त्यक्तव्यम्। कल्पितत्वाकल्पितत्वज्ञानंच लोभरागद्वेषादिसद्भावासद्भावाभ्यां सुलभम्। न चात्रार्धजरतीन्यायापत्तिः। प्रमाणेषु तस्येष्टत्वात्। शरीरादिप्रमेये एव तन्नेष्यते। एतदपि तत्रैव मीमांसाप्रथमतृतीयपादे "हेतुदर्शना" दित्यधिकरणे लोभमूलक-स्मृति-वाक्यानामप्रामाण्यं तत्कारणं च सोदाहरणं दर्शितम्।

बहिर्निष्काष्येति (१३) जन्मना ब्राह्मणत्वादिवर्णप्रबोधक-वाक्यानि श्रुतिविरुद्धानि स्वस्वीय-सन्तति-सुख जीविकासम्पादनलोभमूलकानि चेति तेषां बहिर्निष्कासे हेतुद्वयम्। एतत्सुखजीविकाभङ्गभयेनैव जन्मब्राह्मणत्वाभिमानिनो वेदशास्त्र-सम्मतं गुणवादं नाङ्गीकुर्वन्ति सर्वप्रमाणविरुद्धं च जातिवादं समर्थयन्ति। नास्तिक्यवादिन्यपि ते तादृशं क्रोधं न दर्शयन्ति यादृशं गुणवर्णवादिनि। भूस्वामित्वराजसिंहासना[illegible]र्मूलनेनापि तद्वतां तादृशं दुःखं न जायते यादृशं जातिप्रथानिर्मूलनेनैते संभ[illegible]। यद्यपि भूस्वामित्वादिनिर्मूलनवदेतन्नास्ति तत्र हि तदीयं भूम्यादिकं बलादादायान्येभ्यो दत्तमासीत्। अत्र चैतदीयं ब्राह्म[illegible] निष्कास्यान्येभ्यो न दास्यते तथा प्यप्रयत्नलभ्य श्रेष्ठत्वादिभङ्ग भीत्या चिन्त[illegible]पीडितान्तःकरणा भवन्त्येते।

ईश्वर और वेदशास्त्रो में जिनकी भक्ति और श्रद्धा हो उनको ही ईश्वराराधन में और वेदशास्त्र पढ़ने में अधिकार है चाहे वे किसी देश में पैदे हुए हों। सर्वजननी पृथ्वी में कहीं भी स्वतः दोष नहीं है। वह तो केवल पापियों के हृदय में ही है। ऐसे लोगों के अधिक संख्या में बहुकाल तक निवास करने से देश में भी अज्ञानी लोग दोष का आरोपण करते हैं। दोषियों के हट जाने के बाद वह देश भी शुद्ध समझा जायगा।

नास्तिका यत्र भूयांसस्तन्मध्याचरितो वृषः। फलमल्पं प्रसूतेऽतस्तं चरेद्धार्मिकाश्रये ।१९।
यथेश्वरो न देशस्य स्वामी कस्य चिदेव हि। न जातेरपि कस्याश्चित्पृथिव्यां स्वत्वमिष्यते
तथा वेदोऽपि तद्वाक्यं नैकदेशनिवासिनाम्। नापि वर्गविशेषस्य पैतृकं स्वत्वमिष्यते ।२१।
यो हि देवं भजेद्भक्त्या तस्यैव स भवेत्तथा। वेदं यः श्रद्धयाऽधीते स एव वैदिकोत्तमः ॥

नास्तिक लोग अधिक संख्या में जहाँ रहते है वहाँ किया हुआ धर्म अल्पफल देता है। अतः उसे धार्मिक जनता के देश में करे। जैसा ईश्वर किसी एक देश का ही और किसी जाति का स्वामी नहीं है वैसा ही ईश्वर वाक्य रूप वेद भी किसी एक देशवासी का और किसी वर्गविशेष का ही पैतृक सम्पत्ति नहीं है।

अधिकारादिचर्चा हि कर्मसु क्रियते सदा। न ज्ञाने नापि तद्धेतुपठनादौ मनीषिभिः २३
ज्ञाने तत्साधने शास्त्र-विद्याभ्यासे तु केवलः। प्राक्तनस्वात्मसंस्कारो ह्यधिकारस्य कारणम्
यस्य प्राक्तनसंस्कारो यच्छास्त्राधिगमोचितः। तस्य तत्राधिकारस्तु जन्मसिद्धः प्रकीर्तितः॥
ये च यज्ञोपवीतादिसंस्कारैः संस्कृता नराः। त एव वेदशास्त्रादावधिकुर्वन्ति नेतरे २६
ग्रहणे धारणे सम्यक् पटवो वटवश्चये। सर्वे यज्ञोपवीतादिसंस्कारार्हा भवन्ति ते ॥ २७ ॥

अधिकार और अनधिकार की चर्चा कर्तव्य कर्मों में ही की जाती न कि ज्ञान में और न ज्ञानहेतु पढ़ाई में। ज्ञान और ज्ञान साधन शास्त्राभ्यास में तो केवल पूर्वजन्म संस्कार ही अधिकार कारण होता है। वेदशास्त्राभ्यास का योग्य सस्कार जिनमें हो वे ही उपनयन संस्कार के बाद उनके पढ़ने में अधिकारी

यो हि देवमिति (२२ य ईश्वरमङ्गीकरोति भजते च स एवास्तिकोऽन्यश्च न[illegible] एवं यो वेदमधीते तदुक्तमनुतिष्ठति स वैदिकोऽन्यश्चावैदिकः। एवं शास्त्रि[illegible]चार्यचतुर्वेदाद्युपाधिषु ज्ञातव्यम्। ज[illegible]थावादिषु चैतदपि विपरीतं शास्त्रविरुद्धमेव वर्तते। न केवलं जातिवादिभिः ब्राह्मणे[illegible]दिकमेव जन्मनाऽङ्गी क्रियते किन्तु शास्त्रिपण्डिताचार्यचतुर्वेदाद्युपाधयोऽपि।

होते हैं। उपनयन संस्कार के लिए भी वे ही अधिकारी हैं जिनको विद्याग्रहण और धारण में शक्ति जन्म सिद्ध रहती हो।

अधिकारादिचर्चेति (२४) अस्यायमभिप्रायः। अधिकारो नाम कर्तव्ये कर्मणि कस्मिश्चिदेव कस्यचिदेव पुंसो भवति न तु सर्वत्र सर्वस्य। तन्तुवायो नाम वस्त्रनिर्माणेऽधिकारी न तु घटनिर्माणे। घटकर्मणि नियुज्यमानश्चेत्स घटमेव विघटयेत्। तन्तुवयनाभ्यासे च यःकोऽपि तादृशरुचिमानधिकारी भवति। एवमधीत–साहित्यशास्त्रस्यतच्छास्त्राध्यापनेऽधिकारो न तु न्यायादि शास्त्राध्यापने। यद्यत्र स नियुज्यते स्वस्य परेषां च क्लेशमुत्पादयेत्। साहित्याध्ययने च तद्रुचिः सर्वोऽप्यधिकार्येव। एवमधीतवेदः स्वशास्त्रमेवाध्यापयितुं शक्तो नान्यत्। वेदाध्ययने च तद्रुचिः सर्वोऽप्यधिकारी भवति। अतः कर्मस्वेवाधिकारपरीक्षा भवति, न तु तत्तद्विद्याभ्यासे। तद्रुचिहीनः तत्संस्कारहीनो वा तत्तच्छास्त्राभ्यासे यदि प्रविशेत् तदा स कुण्ठितमतिस्सन् स्वयमेवाचिरात्ततो निवर्तेत। तावता न कस्यापि हानिः। तद्रुचितत्संस्कारानुसारेणैव सर्वः स्वानुकूलविद्याभ्यासे प्रविशति न सर्वत्र। अतो ज्ञाने ज्ञानानुकूलशास्त्राभ्यासे चाधिकारपरीक्षा न युक्ता न वा ज्ञानं तदनुकूलाभ्यासो वा कस्माच्चिद् गोपनीय इति।

ननु युद्धादिसमये स्वराष्ट्रस्य नीतिः दौर्बल्यं वा परराष्ट्राय न ज्ञापनीयं वर्तते। अपि चोपनिषदां रहस्यविद्येति नामान्तरमप्यस्ति। अतस्तत्राप्यधिकारिपरीक्षा स्यादेवेति तत्कथमुच्चते ज्ञानं तदनुकूलाभ्यासो वा न गोपनीय इति चेदुच्यते। तत्राप्यनिष्टकार्यकारित्वशङ्कयैव न सर्वस्मै तदावेद्यते। स्वराष्ट्रदौर्बल्यमन्यराष्ट्रेण यदि ज्ञायेत तदा सोऽन्य आक्रमणं कुर्यादिति तत्रापि विपरीतकार्यशङ्कयैव तन्न ज्ञाप्यते, यत्र सा नास्ति तत्र मित्रराष्ट्राय ज्ञाप्यत एव। एवं रहस्यविद्यामधिगत्य दुष्टा तल्लब्धाणिमादिसिद्धि द्वारा लोकान् वञ्चयेयुः, रावणादिराक्षसवद्वा सज्जनपीड़ां कुर्युरिति शङ्कयैव साऽपि न सर्वानुपदिश्यते। यत्र च सा शङ्का नास्ति तादृशविनीतं प्रति रहस्यविद्याऽप्युपदिश्यते एवेति सर्वत्र कर्म हेतुकैवाधिकारिपरीक्षा न तु विद्यानिमित्तिकेति।

अपचेष्टानिष्टफलप्रदातृत्वं तत्तकर्मणामेव वर्तते न तु तत्तज्ज्ञानमात्रस्य। सत्यशौचाचारदानपुण्यदेवभक्त्यादिकं चौर्यानृतभाषणप्राणिहिंसादिकं च प्रायः सर्वे जना जानन्त्येव, न तावता तेषामिष्टमनिष्टं वा फलं भवति, किन्तु तत्तत्कर्मणामनुष्ठानादेव तल्लाभः। एवं सर्वशास्त्र[illegible]यूनेन तद्विहितसर्वकर्मकलापानुष्ठान[illegible] वा न तदधिकारिणामिष्टं फलं न वा[illegible]धिकारिणमनिष्टं भविष्यतीति न ज्ञानसाधनविद्याभ्यासेऽधिकारानधिक[illegible]क्षा युक्ता। यद्यब्राह्मणैरार्त्विज्यादिकरणेऽनिष्टं स्यात् तदा ते न तत्र प्रवर्[illegible], जातिवादिभिर्वा तेभ्यस्तत्राधिकारो न देयताम्। सर्वथाऽपि वेदविद्याभ्यासा[illegible]पि जातिवादिभिरपि न्यायतो वारयितुं शक्यः।

यत्तु विद्यायामपि जन्मजातिबुध्याऽधिकारिपरीक्षेदानीं क्रियते साऽत्यन्तं गर्ह्यैव। मनुष्येष्ववान्तरजातेः केनापि प्रमाणेन साधयितुमशक्यत्वात्। अवान्तरजाति–प्रथायां पूजा-सन्मानादिस्वार्थ लोभेनानायाससुखजीविकालाभ-लोभेन च कामं केचन तत्र दुराग्रहं कुर्वन्तु नाम, तदन्यैश्चतत्र न कियानपि वा विश्वासलेशः शास्त्रानुसारेण करणीयो वर्तते।

निरूपितश्चायं विषयोऽस्माभिर्जात्युपाधिविवेके विस्तरेण। अपि च जातिप्रथा-वादिमतेऽपि सर्वेषामधिकारो वेदविद्यायां न्यायतःसिद्ध एव भवति। तथाहि दृष्टफलेषु कर्मंषु न पर्युदस्तत्वादिकं प्रतीक्ष्यते किंत्वदृष्टफलेष्वेव। अतएवाग्निचयने "औदुम्बर मुलूखलं सर्वौषधस्य पूरयित्वाऽवहन्ति, अथैतदुपदधाति" इति वाक्यविहितोप-धेयोलूखलसंस्कारार्थावघातस्यादृष्टार्थत्वेन तत्र शूद्रस्यानधिकारेऽपि व्रीहीनवहन्तीति विहितावघातस्य तण्डलनिष्पत्तिरूपदृष्टार्थत्वेन तत्र शूद्रस्याधिकारोऽङ्गीकृतः। एवमध्ययन-स्यापि अर्थज्ञानरूपदृष्टार्थत्वेन तत्र सर्वेषामधिकारः स्यादेव। वेदाध्ययनस्य दृष्टार्थत्वं पूर्वतन्त्रे जिज्ञासाधिकरणे साधितमेव। अन्यथा तस्यादृष्टर्थत्वेऽध्ययनमात्रेण कृतार्थत्वा-दग्रेऽर्थविचारे पुमान्न प्रवर्तेत। यच्च तत्रैवोक्तं गुरुमुखतो ब्रह्मचर्यव्रतेन कृताध्ययनस्य नियमादृष्टं भवतीति तदपि सर्वेषां संभवत्येव। सर्वोऽपि वेदमधिजिगमिषुः उपनेयो गुरु-मुखतोऽध्याप्यश्च भवत्येव।

महाभारतादिग्रन्थेषु सर्वेषामधिकारः स्पष्टमेवोक्तः। तथाहि "इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती। विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः" (शान्ति पं० १८८/१५) इति। ब्राह्मी सरस्वती-वेदविद्या ब्रह्मणा पूर्वं चतुर्वर्णान् प्रति विहितैव। तदर्थश्च शब्दार्थसम्प्रदायप्रवर्तकोऽजः सर्वेषां वर्णानां समक्षमविशेषेण वेदमध्यापयामास। ये तद्ग्रहणशक्तयस्ते तमधारयन्। अन्ये चाशक्तास्ततो विरता इति। स न्यायोऽद्यतना-ध्यापनेऽप्यनुवर्तत एव। इदानीमपि पिता गुरुर्वा पुत्रान् स्वशिष्यत्वेनागतांश्च सर्वा-नपि स्वकीय वेदविद्यालयादिषु प्रवेशयन्ति पाठयन्ति चाविशेषेणैव तथापि मन्दबुद्धयः स्वत एव अध्ययनतो विरमन्ति न तु मन्द बुद्धि पुत्रत्वेनैव हेतुनाऽध्ययनादितो दूरीक्रियन्ते, तथाऽऽदौ युगे मन्दबुद्धित्वेन केचन निवर्तन्तां नाम, न चैतावता तत्पुत्रपौत्रादिवंशपरंपरा गता बुद्धिमन्तोऽपि वेदाध्ययनादितो निवर्तयितुं युक्ताः। यदि बलात्तेनिवर्त्येरन् तदा तत्र निवर्तकजनगतद्वेष एव कारणं भवति न निवर्त्यगतदोषः। अत उक्तं लोभा त्त्वज्ञानतांगता इति। गता इत्यन्तर्भावितणिजर्थः। गमिता इत्यर्थं। यच्च पूर्वोत्तर-मीमांसूयोजातिशूद्रस्यानधिकारसाधनाय भाष्यकारैर्वाग्जालं बहुरचितं तदीश्वरनिय-[illegible] शास्त्रन्यायस्य च विरुद्धमेव। [illegible] भिप्रेतशूद्रादिवर्णस्य जातित्वासंभवात्। सूत्राण्यपि तत्रस्थानि गुणतो वर्णसाधनें एव स[illegible]त्यन्यत्र विस्तरः।

ब्रह्मपुराणमहाभारतादावपि जन्म जाति[illegible] बहुधादूषितैव उमामहेश्वरसंवादे। तथाहि "न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च स[illegible]"। कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु

कारणम् सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते । वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति" "ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः । निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः" (अ० २२३।५६–५८) इति । एवमेवानुशासनपर्वणि (१४३।५०–५२). स्पष्टमुक्तम् । अत्र श्रुतिसंस्कारौ न निषिद्धौ, किन्तु न तावन्मात्रेण ब्राह्मण्यं किन्तु वृत्तेनेति वृत्तस्य प्रामुख्यप्रदर्शनार्थं तथोक्तम् । योनिसन्ततिविषये च निषेध एव । तयोर्दुर्ज्ञेयत्वात् । यथा कृत्यसाध्यं न विधीयते तथा दुर्ज्ञेयमपि न ज्ञातव्यत्वेन चोद्यते । ननु तर्हि दुर्ज्ञेयत्वेनैव निवृत्तिसिद्धौ कुतोऽत्र पुनर्निषेधः न योनिर्न सन्ततिरति चेदुच्यते । अज्ञानिनः पित्रादिगतधर्मं पुत्रादिष्वारोपयन्ति । अतएव विद्याहीनानपि जनाः पण्डितान् अनधीतवेदानपि द्विवेदान् चतुर्वेदांश्च कथयन्ति । तद्वत् ब्राह्मणपुत्रमपि दुष्टहेतुना केचन ब्राह्मणं मन्येरन्निति तन्निषेधः कृतः । एवं वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपित्यत्रापि मूर्खजनारोपितं शूद्रत्वं वारयित्वा ब्राह्मणत्वं शास्त्रसिद्धं ज्ञाप्यत इति मन्तव्यम् । एवं "एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः । शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः (अनु० प्र० १४३।४६) इत्यत्रापि शूद्रत्वस्याज्ञजनारोपितस्यानुवादमात्रमिति ज्ञातव्यम् । एतैः कर्मफलैः पूर्वोक्तैः पितृदेवातिथिपूजानित्याग्निहोत्रत्रेताग्न्याधानादिकर्मफलैरित्यर्थः । एतादृशकर्मफलसम्पादित ब्राह्मणत्वस्योत्तरत्र बृहस्पतिसवादिषु विनियोगो न तावन्मात्रेण कृतकृत्यता । अधिकमन्यत्र विस्तृतम् ।

यत्र वेदास्तत्र यज्ञा यत्रैते तत्र वर्णिनः । चत्वारोऽप्याश्रमाश्चैव सन्ति नान्यत्र कुत्रचित् ॥
भारतं पुण्यभूमिर्हि वेदास्तत्रैव सन्त्यपि । चतुर्वर्णाश्रमाचारव्यवहारप्रयोजकाः ॥२९॥

जहाँ वेद हैं वहाँ यज्ञ भी हैं । जहाँ ये दोनों हैं वहीं चार वर्ण और चार आश्रम भी हैं दूसरे देश में नहीं । भारत देश पुण्यभूमि है । उसीमें वर्णाश्रम और उनके कर्म बताने वाले वेद भी हैं ।

भारतं पुण्यभूमिरिति (३०) तदुक्तं ब्रह्मपुराणेऽपि "उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे । वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥ कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च इच्छताम्" (१९।१–२) इति । कर्मभूमिर्नाम पुण्यभूमिः । स्वर्गापवर्गहेतुत्वात् । यत्तूक्तममरकोशे "आर्यावर्तं पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोरिति तदेतत्पुराणश्लोकविरुद्धत्वादप्रमाणम् ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

वर्णाश्रम स्वरूपं तत् तद्धर्मान् युगभेदतः । शृण्वन्तु मुनयः सम्यक् स्वर्गमोक्ष प्रसाधकान् ॥
गृहस्थाश्रम कार्यार्थं वर्णास्तत्रैव सम्मताः । नान्याश्रमेषु तद्भेदस्तत्कार्याणामभावतः ॥२॥
वर्णकार्याणि गार्हस्थ्यं प्रत्येवाम्नायवाक्यतः । विधीयन्ते प्रभेदेन बृहस्पतिसवादयः ॥३॥
वसन्ताद्यृतुभेदेन वन्ह्याधानमपि श्रुतौ । गृहस्थानेव विप्रत्वकामादीन् प्रति चोद्यते ॥४॥
न ब्रह्मचारिकृत्ये वा श्रुत्याद्यध्ययनात्मके । भिक्षाटनादितद्धर्मे वर्णभेदाद्भिदाऽस्ति हि ॥५॥
न वानप्रस्थधर्मे वा न सन्यासाश्रमोचते । भेदोऽस्तिवर्णभेदेन वेदवाक्यप्रचोदितः ॥६॥
वर्णप्रभेदतो भिन्नं यद्यत्कर्म विधीयते । वेदेन तत्र सर्वत्र गृहस्था ह्यधिकारिणः ॥७॥
तस्माद्गृहाश्रमे वर्णा ब्राह्मणत्वादयः पुनः । नान्येषु ब्रह्मचर्यादिसन्यासान्ताश्रमेषु ते ॥८॥

हे मुनिगण ! अब वर्ण और आश्रमों का स्वरूप और उनके धर्म जो स्वर्ग और मोक्ष के साधक है आप ठीक सुनिये। गृहस्थोचितकार्यों के लिये ब्राह्मणत्वादि चारवर्ण भी उसी आश्रम में ही माने जाते हैं न कि तदितर आश्रमों में। क्यों ? उन तीन आश्रमों में वर्ण भेद प्रयुक्त कार्यभेद ही नहीं है। बृहस्पतिसव राजसूय वैश्यस्तोम और स्थपतियागादिक जितने ही वर्णोद्देश्यक कार्य है वे सब गृहस्थों के प्रति शास्त्र से विहित हैं। वसन्तादि ऋतुभेद से ब्राह्मणत्वादिकामी के प्रति वेदविहित आधान भी गृहस्थ के लिये हैं। वेद पढ़ना भिक्षाटन करना इत्यादि जितने ब्रह्मचारीकार्य हैं वे सब सभी के प्रति एकरूप से विहित हैं न कि उनमें वर्णभेद से भेद। अर्थात ब्राह्मणवटु एक ढंग से पढ़े और क्षत्रियवटु दूसरे ढंग से पढ़े और ब्राह्मणवानप्रस्थ अमुक प्रकार से वनवास धर्म करे और क्षत्रियादिवानप्रस्थ उससे भिन्न प्रकार से अपने धर्मों का अनुष्ठान करे ऐसा नहीं है। एवं संन्यास धर्म भी एक ही प्रकार के है न कि वर्ण भेद से भिन्न। उनमें वर्णभेद का उल्लेख मात्र भी शास्त्रों में दीखता नहीं है। वर्णभेद को लेकर जितने ही भिन्न-भिन्न कार्य शास्त्रों में विहित हैं उन सबमें गृहस्थ ही अधिकारी है। अतः गृहस्थाश्रम में ही वर्ण हैं।

तस्माद्गृहाश्रमे वर्णाः (८) इति । कर्ममीमांसकाचार्या जैमिनि-प्रभृतयो मन्यन्ते गार्हस्थ्यमेक एवाश्रमो नत्वाश्र[illegible]रमिति । दर्शितं च तन्मतं गौतम[illegible] सूत्रे "ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्र[illegible]विधानाद्गार्हस्थ्यस्य" (तृतीयाध्यायान्तिमसूत्रम्) इति । तदभिप्रायश्च परा[illegible]ीये दर्शितः । तथा हि "आचार्यास्तु गार्हस्थ्यमेक एवाश्रमो नान्यः क[illegible]तीति मन्यन्ते । हेतुं चाचक्षते गार्हस्थ्यस्य प्रत्यक्षश्रुतिषु विधानादितरस्य त[illegible]दिति । तथाहि बह्वृचाः 'अग्निमीळे'

इत्यारभ्य मन्त्रब्राह्मणात्मके कृत्स्नेऽपिवेदे होतृकर्तव्यमेवामनन्ति । यजुर्वेदिनश्च "इषेत्वे-त्यादिनाऽध्वर्युकर्तृकम् । सामगा अपि" 'अग्न आयाहि' इत्यादिनोद्गातृकर्तव्यम् । होत्रा-दयश्च गृहस्था एव । तथाचाधीयमानेषु प्रत्यक्षवेदेषु गृहस्थकर्तव्याभिधानेन तदाश्रमविधिः परिकल्प्यते । न त्वेवमितराश्रमविधिकल्पकं विधिं कञ्चित्पश्यामः । अत एव "यावज्जी-वमग्निहोत्रं जुहोति" इति श्रुतिः कृत्स्नं पुरुषायुषं गृहिकर्मस्वेव विनियुङ्क्ते । श्रुत्यन्त-रंच 'एतद्वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रं जरया वा ह्येतस्मान्मुच्यते मृत्युना वा" इति । न चैवं सति कथं ब्रह्मचर्याश्रमाङ्गीकार इति शङ्कनीयम् । नैष्ठिकस्य पक्षकोटिनिक्षिप्त-त्वात् । उपकुर्वाणस्य प्रतिपत्तृत्वेनाश्रमित्वाभावात् । यदा कर्मित्वेनाभिमतयोः ब्रह्मचा-रिवनस्थयोरीदृशी गतिः तदा कैव कथा कृत्स्नकर्मत्यागिनो यतेः । तस्माद्गार्हस्थ्यमेक एवाश्रम इत्याचार्याणां मतम्" इति । एवमेव सत्याषाढश्रौतसूत्रेऽपि गार्हस्थ्यस्यैव समर्थ-नमित्थं कृतम्" तस्माच्छ्रुतितः प्रत्यक्षफलत्वाच्च शिष्टानेतानाश्रमान् (गृहस्थाश्रमान्) एके ब्रुवते । त्रैविद्यवृद्धानांतु वेदाः प्रमाणमिति निष्ठा, तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपश्वा-ज्यपयः कपालपत्नीसम्बन्धान्युच्चैर्नीचैः कार्यमिति तद्विरुद्धाचारो न प्रमाणमिति मन्यन्ते । एतदुक्तं भवति सर्वेषु वेदेषु सर्वासु शाखासु अग्निहोत्रादीनि विश्वसृजामयनपर्यन्तानि कर्माण्येव तात्पर्येण विधीयन्ते । अतोगार्हस्थ्यमेव श्रेष्ठतमम् । ऊर्ध्वरेतसां त्वाश्रमाः तद्विरुद्धा नैव समाश्रयणीया यदि वेदाः प्रमाणम् । तथाच गौतमः "ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्येति । यद्यपि "ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेदि" त्यादिजाबालाद्युपनिषत्सु आश्रमचतुष्टयस्योल्लेखः तद्विधयश्च श्रूयन्ते । उत्तर-मीमांसायां च चत्वारोऽप्याश्रमाःसाधिताः तथापि तत्सर्वं ते जैमिनिप्रभृतिमीमांसका नाङ्गीकुर्वन्ति । वर्णाश्च कर्मार्थाः ! तदुक्तं शाङ्करभाष्ये "ब्रह्मणा सृष्टा वर्णाः कर्मार्थम्" (बृ० उ० १।४।१५) इति । तच्च कर्म वैदिकमेव न तु लौकिकम् । तस्य स्वपरराष्ट्रसाधा-रणत्वेन तत्र वर्णोद्देश्यकत्वाभावात् । वैदिकं कर्म यज्ञादिरूपम् । तदर्था वर्णाः । माधवा-चार्येणापि बृहदारण्यवार्तिकसारे इत्थमभिहितम् "आनन्दबिन्द्वभिव्यक्तिहेतुकर्मप्रसिद्धये । ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानां सृष्टिर्यत्नेन वर्णितेति । आनन्दः सागरोपमो ब्रह्मानन्दः तत्र बिन्दु-परिमाणात्मकः स्वर्गानन्दः । तदभिव्यक्तौ हेतुभूतं कर्म ज्योतिष्टोमादि तदर्थं वर्णानां सृष्टिरित्यर्थः । एवं पद्मपुराणेऽपि 'यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद्ब्रह्मा चकार ह । चातुर्वर्ण्यं महाराज यज्ञसाधनमुत्तमम्" (सृष्टि० अ० ३।१३२) इत्युक्तम् । यज्ञादिकं च गृहस्थं प्रत्येव विहितमिति सर्वजनप्रसिद्धमत्रापि [illegible]तम् । अतस्तत्र यज्ञाख्य—कर्मणि व[illegible] विनियुज्यमाना वर्णा अपि गृहस्थाश्र[illegible] सिद्धं भवति । तस्मादुक्तमत्र गृहाश्रम वर्णा न तु ब्रह्मचर्यादित्रये इति । [illegible] जन्मसिद्धवर्णजातिप्रथा दूरापास्तैव इत्यपि सिद्धं भवति ।

येषामलौकिकार्थानामुल्लेखो दृश्यते श्रुतौ । तत्रस्थैरर्थवादैस्तत्स्वरूपमपि निर्णयेत् ॥९॥
वेदोक्तवाजपेयादिशब्दवद्ब्राह्मणादयः । शब्दा व्याख्यातुमर्हन्ति तदीयार्थवचोबलात् ॥१०॥
शमो दमस्तितिक्षा च शान्तिरार्जवमेव च । अधीतवेदशास्त्रत्वं येषां ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
एतल्लक्षणहीनो यः विप्रपुत्रत्वहेतुना । विप्रमात्मानमाचष्टे न पश्येत्तन्मुखं जनः ॥१२॥
स हि मूढः स्वदेहे तद्विप्रत्वं जनकात्मगम् । समारोप्य ब्रवीत्येवमतः स ब्राह्मणब्रुवः ।१३॥
न हि पित्रादिपाण्डित्यं स्वात्मन्यारोप्य युक्तधीः । ब्रूते पण्डितमात्मानं कश्चिल्लज्जादिमान्नरः
पितृपुत्रात्मनोर्भेदान्नान्योन्यगुणसङ्क्रमः । जन्मतः संभवेज्जातु संसर्गात्स्यादपि क्वचित् ।
पितृवापुषवीर्येण तज्जात्याकृतिमद्वपुः । प्रायः प्रजायते सूनोः न तद्रूपादिको गुणः ॥१६॥

वेद में जिन-जिन अलौकिक (श्रौत) ब्राह्मणादि वर्णों का उल्लेख है उनका स्वरूप का भी वहाँ के अर्थवाद वाक्यों से निर्णय करना चाहिये । जैसे वाजपेयादि पदार्थ । शम दम और तितिक्षादि जिनमें हों और जो वेदशास्त्र भी पढ़े हों वे ही ब्राह्मण कहे जाते हैं । इन गुणों के न रहने पर भी ब्राह्मण पुत्र होने के नाते जो अपने को ब्राह्मण कहता है, लोग उसका मुख भी न देखें । क्योंकि वह मूढ़ पिता की आत्मा में रहने वाले ब्राह्मणत्व को अपने में आरोप करके अपने को ब्राह्मण बताता है । अतः वह ब्राह्मणब्रुव ही है न कि ब्राह्मण । ऐसा कोई मूर्ख नहीं होगा जो अपना पिता पण्डित होने से अपने को भी पण्डित बताता हो । पिता की और पुत्र की आत्मा भिन्न है । अतः एक आत्मा के गुण दूसरे आत्मा में जन्म से नहीं आते जो संसर्गवशात कहीं आ भी सके । पिता के शारीरक वीर्य से उसको आकृति वाला पिण्ड प्रायः पैदा होता है न कि उसके गुणवाला या रूपवाला पिण्ड ।

वाजपेयादि शब्देति (१०) यद्यपि वाजपेयशब्दस्य कर्मनामधेयत्वमिष्टं तथापि वाजमन्नं सुराद्रव्यं पेयं यत्रेति व्युत्पत्ति निमित्तीकृत्यैव वाजपेयशब्दस्य प्रवृत्तत्वात् स्वप्रकरणगतवाक्यानुसार्यर्थत्वमस्त्येव । विप्रपुत्रत्वहेतुनेति (१२) । यदि स्वपिताऽपि शास्त्रसम्मतब्राह्मणो न स्यात्किन्तु सोऽपि कथमप्यागत-ब्राह्मणत्वव्यपदेशभागेव चेत्तदा स्ववंशप्रवर्तकमूलपुरुषनिष्ठ–ब्राह्मणत्वं वंशपरम्परया स्वस्मिन्नारोप्य स्वं ब्राह्मणमाचष्टे इति वक्तव्यम् । तादृशमूल पुरुषनिष्ठं ब्राह्मणत्वमपि द्विविधम् । एकं शास्त्रीयम् । अपरमाकस्मिकम् । शास्त्रीयं ब्राह्मणत्वं च वैदिकार्थवाद[illegible]चित शमदमादिगुणवत्वम् । आकस्मिकं [illegible]ंच जातिप्रथायां गुणकर्म-शास्त्रविद्या[illegible]तानामपि ब्राह्मणानां पूजासन्मानादिकं दृष्ट्वा ब्राह्मणोचितगोत्रनामादिभिः स्वयं स्वीकृ[illegible]णव्यपदेश भाक्त्वम् । तादृश कल्पित ब्राह्मणवंशपरम्परागता अपि बहवोऽद्यतनाः स्वी[illegible]दि[illegible]तान्तमज्ञात्वा गर्वेण कथयन्ति वयं जन्मना ब्राह्मणा इति । एतादृशब्राह्मण्यं निमित्ती[illegible] बहवो भेदा ब्राह्मणत्वाभिमानि-

ष्विदानीमपि दृश्यन्ते । एतद्रहस्यं जानन्तोऽधुनापि बहवोऽब्राह्मण-व्यपदेशभाजो बुद्धिमन्तः सन्मानादिलोभेन नीचजातित्वव्यपदेश-निराकरणेच्छाया वा परदेशं गत्वा स्वयं ब्राह्मणा भवन्त्येव । अत्र स्मृतौ शास्त्रीयं ब्राह्मणत्वमेवाङ्गीकृत्यान्यत्सर्वं दूषितमिति स्मृत्यन्तरापेक्षयाऽत्र वैशिष्टयम् ।

तेजः क्षमा धृतिर्दाक्ष्यं देहदाढर्यं पराक्रमः । प्राणार्पणपणेनापि यशः कामित्वमेव च ॥१७॥
लघुत्वं सर्वकार्येषु जीवकारुण्यमेव च । अधीतवेद-शास्त्रत्वं येषां ते क्षत्रिया मताः ॥१८॥
एतल्लक्षणहीनो यः क्षत्रियोत्पत्तिहेतुना । स्वात्मानं क्षत्रियं ब्रूते न पश्येदपि तन्मुखम् ॥
सोऽपि मूढः स्वीयदेहे क्षत्रियत्वं परात्मगम् । समारोप्यं ब्रवीत्येवेमतः स क्षत्रियब्रुवः ॥
यज्ञे दीक्षितराजन्य-वैश्ययोरपि विप्रता । श्रुतौ श्रुताऽपि सा विप्र-गुणसम्बन्धहेतुका ।२१।
स्वजीविकायुधादीनि त्यक्त्वा स्वीयगुणैः सह विप्रस्य तानि राजन्य-वैश्यौ धारयतश्च हि ।
पुनर्यदा स्वकीयानि तानि धारयतश्च तौ । तदा विप्रत्वमुत्सृज्य वैश्यक्षत्रियते त्वितः ॥
अतोऽसाधारणैस्तत्तद्गुणै ब्राह्मणतादयः । वर्णाः सिध्येयुरित्येतत्सर्व-शास्त्रविदां मतम् २४

तेजस्विता क्षमा और धैर्यादि जिस में हो, जो यश कमाने में अपने जीवित को भी बलिदान देने को तैयार रहता हो, कठिन कामों को भी अनायास से करने को समर्थ हो और जो वेद पढ़ा हो वही क्षत्रिय है। इन गुणों के न रहने पर जो क्षत्रिय से उत्पन्न होने का कारण अपने को क्षत्रिय बताता हो लोग उसका भी मुख न देखे। वह भी मूढ़ दूसरे के क्षत्रियत्व को अपने में आरोप करके अपने को क्षत्रिय कहता है। अतः वह क्षत्रियब्रुव ही है न कि क्षत्रिय। यज्ञ में दीक्षित क्षत्रिय और वैश्य को भी दीक्षासमय में वेद, ब्राह्मण बताता है, क्यों ! उस समय वे दोनों ब्राह्मण के यज्ञायुधों को धारण करते और उपवासादि के कारण शमदमादि ब्राह्मण गुणवाले भी हो जाते हैं। जब वे दीक्षा छोड़कर अपने २ आयुधों को धारण करते और शौर्य धैर्यादि वाले हो जाते हैं तो तब ब्राह्मणत्व छोड़कर वे अपने २ पूर्व वर्ण को धारण करते हैं। यह विषय ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है। अतः तत्तद्वर्णोचित गुणों से ही तत्तद्वर्ण सिद्ध होते न कि जन्म से। यही शास्त्रज्ञों का मत है।

अधीतवेद शास्त्रत्वमिति (१८) इदमेव क्षत्रियत्वादिवर्णसद्भावे हेतुः । तदतिरिक्त तेजः क्षमा शौर्यधैर्य पराक्रमादीनां श[illegible]मादिगुणानांच यवनाङ्ग्लेयादिषु सत्वेऽपि तत्र क्षत्रियत्वादिव्यवहाराभावात् । श्रौतक[illegible]ित वर्णस्वरूपमेतादृशमेव ।

"यज्ञेदीक्षित राजन्येति [illegible] ऐतरेयब्राह्मणे ह्येवमाम्नातम् "प्रजापतिर्यज्ञमसृजत, यज्ञं सृष्टमनु ब्रह्मक्षत्रे अस[illegible]ां, ब्रह्मक्षत्रे अनु द्वय्याः प्रजा असृजन्त हुतादश्चाहु-

दादश्च। ब्रह्मैवानु हुतादः। एता वै प्रजा हुतादो यद्ब्राह्मणाः अथैता अहुतादो यद्राजन्यो वैश्यः शूद्र इति। ताभ्यो यज्ञ उदक्रामत् (पलायितः) तं ब्रह्मक्षत्रे अन्वैताम् (पश्चादगच्छताम्) यान्येव ब्रह्मण आयुधानि तैर्ब्रह्मान्वैत्। यानि क्षत्रस्य तैः क्षत्रम्। एतानि वा ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि। अथैतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व इति। तं क्षत्रमनन्वाप्य (अनुगमनेनालब्ध्वा) न्यवर्ततायुधेभ्यो ह स्मास्य विजमानः (भीतो यज्ञः) पराङैवैति (पलाय्य दूरे गतः) अथैनं ब्रह्मान्वैत्। तमाप्नोत् तमाप्त्वा परस्तान्निरुध्यातिष्ठत् (यज्ञगमनं निरुध्यातिष्ठत्) स आप्तः (यज्ञः) परस्तान्निरुद्धस्तिष्ठन् ज्ञात्वा स्वान्यायुधानि ब्रह्मोपावर्तत (ब्राह्मणसमीपंगतः) तस्माद्धाप्येतर्हि यज्ञो ब्रह्मण्येव ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठित इति। अथैनत् (ब्रह्म-ब्राह्मणं) क्षत्रमन्वागच्छत् तदब्रवीदुप माऽस्मिन् यज्ञे ह्वयस्वेति (उपह्वयस्व मामाहूय यज्ञेन संयोजयेत्यर्थः) तथेत्यब्रवीत् (ब्राह्मणः) तद्वै निधाय (परित्यज्य) स्वान्यायुधानि, ब्रह्मण एवायुधैः ब्रह्मणो रूपेण ब्रह्म भूत्वा यज्ञ मुपावर्तस्वेति। तथेति तत्क्षत्रं (क्षत्रियः) निधाय स्वान्यायुधानि, ब्रह्मण एवायुधैः ब्रह्मणो रूपेण (शमादिगुणोपेत प्रशान्त रूपेण) ब्रह्म भूत्वा यज्ञमुपावर्तत इति। एवं ब्राह्मणो भूत्वा क्षत्रियो यदा यज्ञं प्राप्तवान् तदा ब्राह्मणदेवताऽग्निरस्यापि देवताऽभूत् ब्राह्मणच्छन्दो गायत्री अस्यापि छन्दो ऽभूत् ब्राह्मणस्य ये बान्धवास्तेऽस्यापि बान्धवा अभूवन्। दीक्षावेदनमप्यस्य ब्राह्मण शब्देनैव "अदीक्षिष्टायं ब्राह्मण इति देवेभ्यो निवेदनीयं न तु क्षत्रियशब्देनेति, दीक्षात्यागे च क्षत्रियत्वं क्षत्रदेवतादिकमेवास्येति च अग्रे उक्तम्। अत्र प्रकोष्ठके येऽर्था दर्शितास्ते सायणभाष्यानुसारेणैव। तत्र ब्रह्म भूत्वेति शब्दस्य ब्राह्मणसदृशो भूत्वेतियर्थः सायणेन दर्शितः। स चायुक्तः। यतोऽत्र सादृश्याङ्गीकारे ब्राह्मणदेवताऽस्य देवता ब्राह्मणबन्धुरस्यापि बन्धुरित्यादौ सर्वत्र सादृश्यमेव वर्णनीयं भवेत्। एवं दीक्षावेदनेऽपि 'अदीक्षिष्टायं ब्राह्मणसदृश इति वक्तव्यं भवेत्। एतच्च शतपथादिब्राह्मण श्रौत सूत्रादि विरुद्धम्। तत्र हि दीक्षानन्तरं क्षत्रियवैश्ययोः ब्राह्मणत्वं स्पष्टमङ्गीकृतम्। तथाहि "तस्माद यद्यप्यब्राह्मणो दीक्षते राजन्यो वैश्यो वा ब्राह्मण इत्येवैनमाहुरेतर्हि ब्रह्मणो (यज्ञात्) जायते। तस्मादाहुर्न सवनकृद्धन्तव्य इत्येनस्थ्येव स जायते (काण्वशत पथे (४।२।२) इति। "ब्राह्मण इत्येव वैश्यराजन्ययोरपि (दीक्षवेदनं) श्रुतेः (कात्यायन श्रौतसू० ७।४।१२) इति "क्षत्रियवैश्ययोरप्यदीक्षिष्टायं ब्राह्मण इत्येव ब्रूयात्" (वैखानसश्रौतसू० १२।१०) इति चोक्तम्। दीक्षासमये तयोर्ब्राह्मणत्वप्राप्तिहेतुरपि उपवासव्रतादिप्रयुक्त शमदमादिब्राह्मणगुणसद्भाव एव। एतेन गुणनिबन्धनमेव ब्राह्मणत्वादिकं न तु जन्मनिबन्धनमिति सिद्धम्। एतदेवोपरि मूलश्लोकेषु समर्थितम्। अत्राप्यधिकजिज्ञासुर्भिजत्युपाधिविवेको [illegible] इत्यलमतिविस्तरेण।

वाणिज्यादिस्वभावश्च द्रव्यसंग्रहलालसः। अर्थ[illegible]दि[illegible]स्त्र त्वमेतद्वैश्यस्य लक्षणम्।२५।
एतल्लक्षणहीनोऽपि वैश्यपुत्रत्वहेतुना। यो वदेद्वैश्यम[illegible]ं परित्याज्यः स दुर्मतिः ॥२६॥

मन्द बुद्धिरयं देहे समारोप्यात्म्य वैश्यताम्। ब्रूते वैश्योऽहमित्यस्मान्न वैश्यः किन्तु तद्‌ब्रुवः
दुष्कार्यव्यसनं क्षुद्र-स्वभावो मन्दबुद्धिता। विद्याविहीनता येषां ते शूद्रा वेदसम्मताः ॥२८॥
शूद्रस्वभावहीनोऽपि शूद्रपुत्रत्वहेतुना। आत्मानं यो वदेच्छूद्रं बहिष्कार्यः स दुर्मतिः ॥२९॥
परप्रत्ययनेयात्म बुद्धिः स वपुषि स्वके। पित्रात्मशूद्रतां न्यस्य ब्रूते शूद्रब्रुवो ह्यतः ॥३०॥

जो व्यापारशील और द्रव्यसङ्ग्रह करने में उत्सुक हैं और वेद पढ़े हों वे ही वेदसम्मत वैश्य हैं। इन वैश्य लक्षण न रहने पर भी जो वैश्य पुत्र होने के निमित्त से अपने को वैश्य बताता है वह वैश्य ब्रुव है। जो दुष्कार्य व्यसनी क्षुद्र स्वभाव बुद्धिहीन और विद्या रहित है वे ही वेद सम्मत शूद्र हैं, जो ऐसा न रहने पर भी अर्थात् बुद्धिमान और अच्छा स्वभाव वाला होकर के भी भ्रम से अपने को शूद्र बताता है वह शूद्र ब्रुव और वह बहिष्कार्य भी है।

मन्दबुद्धितेति (२८) ताण्डये तलवकारब्राह्मणे च शूद्रलक्षणमेवमुक्तम्। "तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञियः तस्मादु पादावनेज्येनैव स जिजीविषति" (ता० ६।१।५) (तल० १।६९) इति। तत्र बहुपशु शब्दस्य रामानुजभाष्ये पशुतुल्यत्वमर्थ उक्तः। अतएवासौ बौद्धिक-कार्येष्वकुशलः सन्नन्येषां पादसेवादिकं कृत्वा जीवति। पशुतुल्यत्व-मितरसेवादिना जीविकानयनं च येषु वर्तते ते सर्वेऽपि बहिर्ब्राह्मणादिब्रुवाः सन्तोऽपि वेदसम्मतशूद्रा एव। श्रीमद्भागवतेऽपि ब्राह्मणादिलक्षणान्येतदनुरूपेणैवोक्तानि। तत्र सप्तमस्यैकादशाध्याये "विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रह" इत्यादिभिः श्लोकैर्वर्णका-र्याण्युक्त्वा कीदृशाः ते वर्णा भवन्तीति जिज्ञासायामग्रे वर्णलक्षणान्युक्तानि। तथाहि "शमोदमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम्। ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मल-क्षणम्" शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्यागः आत्मजयः क्षमा। ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम्। देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम्। आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम्।

शूद्रस्य सन्नितिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया। अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम्" (२१–२४) इति। एतल्लक्षणानि यत्र-यत्र नैजतो वर्तन्ते ते एव तत्तद्वर्णत्वेन ज्ञेया भवन्ति। एतदपि तत्रैवोक्तम् "यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभि-व्यञ्जकम्। यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्" (७।११।३५) इति। वर्णाभि-व्यञ्जकमिति यथा शास्त्रीयवार्तालापेन पुरुषनिष्ठमदृश्यमपि पाण्डित्यमवगतं भवति तथा शमदमादिभिर्गुणैरपि तन्निष्ठो ब्राह्मणादिवर्णोऽदृश्योऽप्यवगतो भवतीति भावः। यद-न्यत्रापीति; एतानि ब्राह्मणादि-[illegible] ब्राह्मणादिपुत्रेषु शूद्रादिपुत्रेषु वा यत्र-यत्र दृश्यन्ते ते सर्वे ब्राह्मणादिवर्णत्[illegible] शास्त्रीयवर्णकार्यानुष्ठानसमये ज्ञातव्या इत्यर्थः। तत्रैवैकादश-स्कन्धेऽपि वर्णलक्षण[illegible]मेव दर्शितानि। तद्यथा "शमोदमस्तपः शौचं

सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् । मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः" तेजो बलं धृतिः-शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः । स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः" आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् । अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः । शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया । तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतस्त्विमाः" अशौच मनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः । कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् (१६–२०) इति । एवं श्रीमद्भगवद्गीतायामप्युक्तम् "शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभाजम् (१८–४२) इत्याना । अत्रापि कर्मशब्दस्यलक्षणमेवार्थः ।

नच कर्मशब्दस्य लक्षणावृत्त्या लक्षणपरकत्वाश्रयणापेक्षया शक्त्या कर्मपरकत्वमेवोचितमिति वाच्यम् । शमदमाद्यात्मगुणेषु कृतिविषयत्वाभावेन तेषां कर्मत्वासम्भवात् । यच्चाग्रे "कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्य कर्मस्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्" (४४) इत्युक्तम् । तत्रापि कर्मशब्दस्योपक्रमप्राधान्यन्यायेन स्वभावजशब्दबलेन च लक्षणपरत्वमेव वक्तव्यम् । "वेदो वा प्रायदर्शनादि" त्यधिकरणे हि उच्चैर्ऋचा क्रियते उपांशु यजुषा" इत्यादौ श्रूयमाणानामृगादिशब्दानामसञ्जातविरोधित्वन्यायेन ऋग्वेदादिपरत्पमाश्रितम् । तत्रोपक्रमे ऋग्वेदाद्युल्लेखदर्शनात् । एवमत्राप्युपक्रमे ब्राह्मण–क्षत्रिय–लक्षणप्रदर्शनेनोपसंहारेऽपि वैश्यशूद्रयोर्लक्षणमेव कृषिगौरक्ष्यवाणिज्य परिचर्याशीलत्वाख्यं प्रदर्शितमित्यङ्गीकार्यम् ।

ननु कृष्यादिशब्दानां तच्छीलत्वाश्रयणापेक्षया उपसंहार प्राबल्यन्यायेनोपक्रमस्थशमादीनामेव कर्मत्वमस्त्विचेन्न । उक्तोत्तरत्वात् । तत्र कृतिविषयत्वाभावेन कर्मत्वं न संभवतीत्युक्तमेव । अपिच यदि शमादीनि ब्राह्मणस्य विहितकर्माणि तदा तेषामब्राह्मणेषु सद्भावो दोषत्वेन परिगण्येत । कुतः, ब्राह्मणकर्मानुष्ठानस्य तदन्यप्रत्यवायजनकत्वात् । न च लोके दोषत्वेन गण्यतेऽपितु गुणत्वेनैव । ननु कृष्यादिशीलस्य वैश्यादेः कृष्यादौ स्वतः प्रवृत्तिसंभवादप्रवृत्त–प्रवर्तकत्वलक्षणंकृष्यादिकर्मविधानमयुक्तमिति वाच्यम् । "हुतायां वपायां दीक्षितान्नमश्नीयादित्यादाविव वर्णोद्देश्यक कर्मविधीनामप्यभ्यनुज्ञाविधित्वाङ्गीकारेणादोषात् । अथवा "सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितमित्यादाविव तदितरनिवृत्तिपरत्वं वेध्यते । दत्तदोषश्चापूर्वविधावेव नान्यत्र । तथाचैषां शमदमादिगुणानां ब्राह्मणादिवर्णलक्षत्वेन निश्चितत्वात्तादृशगुणहीनानां तत्तद्वर्णत्वेनात्मप्रख्यापनं बहिष्कार्यत्वे हेतुः स्यादेवेति अत्र तादृशस्य बहिष्कार्यत्वमुक्तम् ।

विप्रत्वादिकमन्यैर्न प्रष्टव्यं नापि तत्स्वतः । व[illegible] किन्तु तत्स्वेन ज्ञातव्यं कर्महेतवे ३१
सज्जनत्वादिकं यद्वन्नोच्यते नैव पृच्छ्यते । ब्राह्[illegible]दिकं तद्वन्न पृच्छेन्नैव कीर्तयेत् ३२
विप्रत्वादिकमन्यस्मादात्मोच्चत्वादिसूचकम् । को मूढ[illegible]भाषेत पृष्टोऽन्यैरात्म-मानदः ३३

एवं सत्यपि यो मोहात्स्वविप्रत्वं ब्रुवन्नपि । पृच्छेद्यद्यन्यवर्णं स चाण्डालः सम्मतो बुधैः ३४
चाण्डालोऽपि तथा पृष्टः पृच्छतेऽप्युत्तरंवदेत्। सद्ब्राह्मणोऽस्मि किं स्यात्त्वत्स्वसा भार्या ममेति च

लोग दूसरों के ब्राह्मणत्वादि वर्णं को न पूछे और वे स्वयं अपने वर्ण को न बतावें। वह वर्ण तो तत्तद्वर्ण कार्य के लिये स्वयं ज्ञातव्य होता है। जैसे लोक में तुम सज्जन है या दुर्जन है ऐसा पूछा नहीं जाता, और मैं सज्जन या दुर्जन हूँ ऐसा स्वयं बताया भी नहीं जाता, वैसा हो मैं ब्राह्मण हूँ ऐसा न बतावें और तुम कौन वर्ण है ऐसा न पूछे। क्यों ब्राह्मण कहने पर बड़ापन सूचित होता हैं और सभी अपने को बड़ा समझते ही हैं। कौन ऐसा मूढ़ होगा जो अपने को नीच समझता हो। जब नीच भी अपने को स्वतः उच्च बताने को तैयार हैं तब उच्चता और नीचता सूचक ब्राह्मणशूद्रादि वर्ण को पूछना और बताना भी परिहासास्पद ही है। परिस्थिति ऐसी होने पर भी यदि कोई अपने को ब्राह्मण बताते हुए दूसरे का वर्ण पूछता हो तब वह दूसरा चाण्डाल भी हों ऐसा उत्तर दें कि मैं उच्च ब्राह्मण हूँ क्या तेरी बहिन मेरी स्त्री होगी ?

विप्रत्वादिकमन्यैरिति (३१) काण्वस्मृतावुक्तम् "ब्राह्मण्यं गोपनीयं हि सर्वदेशेषु सर्वदा। मन्त्रोक्तिमात्रतो नित्यं तदर्थस्यानुचिन्तनम् (२५० श्लोकः) इति। अपिच ब्राह्मणत्वं पात्राणामुत्तमं पात्रम्। पात्रता च न प्रष्टव्या किन्तु संव्यवहाराज्ज्ञातव्या भवति। तदुक्तं मार्कण्डेयस्मृतौ "शीलं संवसता ज्ञात्वा शौचं संव्यवहारतः। प्रज्ञानं कथनाज्ज्ञात्वा त्रिभिः पात्रपरीक्षणम्। कुर्यादेवान्यथा विद्यात्प्रश्नतो न कदाचन" इति।

चाण्डालोऽपीति (३५) चाण्डालत्वं हि न पृथग्वर्णः किन्तु ब्राह्मण्यां शूद्रादुत्पन्नस्य संन्यासिपुत्रस्य च तत्स्मृत्यादिष्वङ्गीकृतम्। आदौ तथाविधमेव सत् पश्चाज्जाति प्रथास्वीकारानन्तरं तदपि नीचजातित्वेन परिगणितम्। अतएव बहवो गुणवन्तो बुद्धिमन्तोऽपि तद्वंशपरम्परागता नीचत्वेन परिगण्यन्ते। अथ च ब्राह्मणीशूद्र-सन्यासिपुत्रत्वरूपचाण्डालत्वस्येदानीं बहु जनेषु सत्वेऽपि ते ब्राह्मणत्वेनैव गण्यन्ते इति शास्त्रगर्हितमेव जातिप्रथायामागतम्।

तत्तत्कार्याय वर्ण्यन्ते प्रशस्यन्ते स्वभावजैः। तत्तद्गुणैर्नरास्तस्माद्वर्णशब्दार्हतां गताः।३६।
वस्तुतो ब्राह्मणो ब्रह्म-ज्ञानवानेव रूढितः। क्षत्रियोऽपि क्षतत्राणाद्वैश्यः कार्यनिवेशतः।३७।
शुचा सेवादिकार्योत्थदेहशोकेन यो [illegible] स एव शूद्रशब्देन मुख्यवृत्त्या निगद्यते।३८।
एवं सत्यपि शास्त्रोयविध्युद्देश्यत्वसि[illegible] मुख्यार्थहेतुभिस्तत्तद्गुणैः स्याद्गौणवर्णिता।३९।

वर्णोचित तत्तत्कार्य [illegible]ये स्वाभाविक गुणों के द्वारा वर्ण वरण किये (चुने) जाते हैं। अतः वे [illegible] शब्द से कहे जाते हैं। यद्यपि योगरूढ़ि से ब्रह्म-

ज्ञानी ही ब्राह्मण कहा जाता है और क्षतत्राण करने वाला क्षत्रिय, सब कार्यों में प्रवेश करने वाला वैश्य और शोक से कष्ट कामों में प्रवृत्त होने वाला शूद्र होते हैं, तथापि तत्तद्वर्णविहित कार्यों के लिये मुख्यार्थ हेतु भूत गुणों से भी गौण ब्राह्मणत्वादि वर्ण शास्त्रों के द्वारा माने जाते हैं।

"वस्तुतो ब्राह्मण इति (३७) बृहदारण्यके श्रूयते "तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति विपापो विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवति" (।४) इति। अत्र ब्राह्मणशब्दस्य ब्रह्मज्ञानवानर्थं। अत एवात्र शाङ्करभाष्येऽप्यूक्तम्" अयन्त्वेवंभूत एतस्यामवस्थायां मुख्यो ब्राह्मणः। प्रागेतस्माद्ब्रह्मस्वरूपावस्थानाद्गौणमस्य ब्राह्मण्यमिति। वज्रसूचकोपनिषदि च शब्दत एव स्पष्टमुक्तन्" "यः कश्चिदात्मानमद्वितीयमपरोक्षीकृत्य शमदमादि सम्पन्नो वर्तते स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृति-पुराणेतिहासानामभिप्रायोऽन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धि नर्स्त्येव" इति। एवं क्षत्रियविषयेऽपि मार्कण्डेयपुराणे श्रूयते " क्षत्रियो यः क्षतत्राणं वध्यमानस्य दुर्मदैः। करोति तस्य तन्नाम वृथैवान्ये हि बिभ्रति (अ० १२२।२४) इति। एवं रघुवंशेऽप्युक्तम् "क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ" (२।५३) इति। रूढः=योगरूढः। यत्तु महा भारते क्वचिदुक्तम्" ब्राह्माणानां क्षतत्राणात्ततः क्षत्रिय उच्यते (शान्ति० अ० ५९।१२६) इति। तदप्रमाणम्। तथासति तान् प्रत्येव राजत्वापत्तेः। ब्राह्मणपदस्यात्र मनुष्यमात्रपरत्वं वा स्यात्। वैश्यशूद्रविषये वायुपुराणे प्रोक्तम् "वैश्यानेव तु तानाहुः कीनाशान् वृत्तिसाधकान्" इति। शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः। निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः" (उपोद्घातपादे ८।१६५) इति। "मुख्यार्थं हेतुभिरिति (३९) मुख्यब्राह्मणत्वादि हेतुभिः शमादिगुणैः तत्तद्वर्णत्वमिष्यत इति भावः

वेदाः सर्वैस्सदाऽध्येया बालिकाभिश्च बालकैः। शैशवे कृतयज्ञोपवीतैस्तैः पंचमाब्दतः ४०
रजस्वलाद्यावस्थासु पतिसम्पर्क-कालतः। स्त्रीभिर्वेदा न चाध्येया तदन्यत्र तु कामतः ४१
पंचवर्षवयस्का हि पितृभि र्बालबालिकाः। वेदवेदाङ्गशिक्षार्थी सम्प्रेष्या गुरुवेश्मसु ।४२।
शौचाचारविहीनानां क्षुद्रकार्याणि कुर्वताम्। नराणां योषितां वाऽपि न वेदाध्ययनं हितम्।
एतद्वर्णस्वरूपं वः प्रोतास्थं समुदीरितम्। तस्यान्यथा प्रवृतिं च शृण्वन्तूत्साहचेतसः ।४४।

लड़के और लड़कियाँ सब पांच साल की अवस्था में यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ें। रजस्वला समय में और [illegible]सम्पर्क अवस्था में स्त्रियां वेद न पढ़े और दूसरे समय में इच्छानुसार पढ़ सकती हैं। बाल और बालिकाओं को पाँच साल की अवस्था में पिता वेद और [illegible]ाङ्ग पढ़ने के लिए गुरुकुलों

में भेज दें। शुद्धि और आचार विचार शून्य और नीच काम करने वाली स्त्री और पुरुष वेद नहीं पढ़ें। यह त्रेता युग में रहने वाले वर्णस्वरूप को मैंने बताया था और उसका अन्यथा परिणाम सुनिये। इति तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

आदौ कृतयुगे नासीदारम्भः श्रौतकर्मणाम्। नापि वर्णव्यवस्था च सर्वे सिद्धास्तदाऽभवन् ।१।
त्रेतायाः प्रथमे पादे प्रारम्भो यज्ञकर्मणाम्। तदा वर्णस्वरूपं हि दर्शितदाकारमात्रकम् ।२।
वेदान्स्त्रियः पुमांसश्च पठन्ति स्म निजेच्छया। वाससा कृतयज्ञोपवीता न्यायपथे स्थिताः।३।
वेदेष्वकुण्ठिता प्रज्ञा येषामासोन्निसर्गतः। आर्त्विज्यं कर्म तेऽकुर्वन् सर्वदा विप्रसंज्ञया ।४।
बलिनः शौर्यधैर्यादिगुणोयेता मनस्विनः। सुव्यवस्थां समाजस्य व्यदधुः क्षत्रसंज्ञया ।५।
वार्तावाणिज्यशीलास्तु द्रव्योपार्जनबुद्धयः। तत्तत्कर्मसु संलग्ना निर्दिष्टा वैश्यशब्दतः ।६।
शौचाचारविहीना ये तामसा मन्दबुद्धयः। स्थूलसेवादिकर्माणि चक्रुस्ते शूद्रनामतः ।७।

पहले कृतयुग में यज्ञादि कर्मों का आरम्भ हुआ ही नहीं और वर्णाश्रम-व्यवस्था भी नही रही। जब त्रेता युग के प्रथम पाद में उन कर्मों का आरम्भ हुआ उस समय ब्राह्मणादि वर्णोंका स्वरूप पूर्वोक्त प्रकार से ही रहता था। वस्त्र को ही यज्ञोपवीत की तरह पहन कर, स्त्री और पुरुष वेद पढ़ते रहे। प्रतिभाशील वेदपण्डित, ऋत्विक बनते थे, शौर्यधैर्यादिमान लोग समाज को सुव्यवस्था से परिपालन करते थे, धनसंग्रह चाहने वाले व्यापार करते थे और मन्द बुद्धि और आचार विचार शून्य यज्ञादि में सेवाकार्य करते थे, वे सब तत्तत्कर्म करते समय ही क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र शब्दों से बुलाये जाते थे।

आदौ कृतयुगे "इति (१) अयमंशो वायुपुराणेऽप्युक्तः" अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः। वर्णाश्र[illegible]श्चाच न तदाऽऽसीन्न सङ्करः। (अनुषङ्गे ८।६१) इति। त्रेतायामिति (२) [illegible]प्युक्तम् "वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान् प्रभुः। यज्ञप्रवर्तनं चैव पशुहिंसाविवर्जितम् (पूर्वार्धे २९।४१) इति। वायावप्युक्तम्" वर्णानां

प्रविभागाश्च त्रेतायां सम्प्रवर्तिताः। यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः" (५७ ६०) इति। एवं पाद्मेऽप्युक्तम् "त्रेतायुगे त्रयीधर्मो ज्ञानवर्णव्यवस्थितिः। माधवे मासि संभूता तेन मे माधवः प्रियः" (पातालखण्डे ९६।१४) इति। माधवे मासि वैशाखमासे शुक्लपक्षेऽक्षयतृतीयामित्यर्थः। ज्ञानवर्णव्यवस्थितिः=ज्ञानेन वर्णानां व्यवस्था कृता। अत्र ज्ञानशब्दस्यात्मविशेषगुणैकदेशवाचकत्वेऽपि लक्षणया तद्विशेषगुणमात्रवाचकत्वमङ्गीकार्यम्। तथाचात्मनिष्ठैस्तत्तद्वर्णोचितगुणैः वर्णानां व्यवस्था कृतेत्यर्थ.। एतदविरोधेनैवात्राप्युक्तम्। यत्तु मनुस्मृतावुक्तम् "तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे" (१।२६) इति, तदनुसारेण यज्ञस्य तदर्थानां वर्णानां चारंभो द्वापर इति ज्ञायते। एवं यदि पूर्वं गुणैः व्यवस्थाऽऽसीच्चेदिदानीमपि सैवाङ्गीकार्या न तु मध्ये काचन पाखण्डजनप्रवर्तित जातिप्रथाऽपि।

एवं संभूय यज्ञादिकर्माण्येककुटुम्बिनः। सोदरा इव चक्रुस्ते भुक्तिमुक्तिफलार्थिनः ॥ ८ ॥
न तेषां वसतावेक पङ्क्तिसंभोजनादिषु। न वा वैवाहिके भेदः कर्मण्यासीन्नृणां सदा ॥९॥
तेषां नाध्यात्मिकान्याधि-भौतिकानि च भूतले। अभूवन्व्यसनान्याधिदैविकानीष्टियोगतः॥
त्रेतायामिह मर्त्यानां यद्यद्दुःखमुपस्थितम्। वारयन्तिस्म ते तत्तच्छ्रौतकर्मप्रभावतः ॥११॥
त्रेतायाः प्रथमे पादे द्वितीयेऽथ तृतीयके। गच्छत्येवं चतुर्थे तु जातो भिन्नरुचिर्नृणाम् ॥
कालानुसारतो लोके नृणां भिन्नरुचिस्तया। भवेत्प्रवृत्तिभेदोऽपि ततः काले महाभिदा १३

इस प्रकार सब वर्ण एक कुटुम्ब के छोटे बड़े भाइयों की तरह मिलकर भुक्तिमुक्ति के साधक यज्ञादि कर्म करते थे। उस समय, उन लोगों के रहन-सहन में विवाह और पंक्तिभोजना द में किसी प्रकार का भेद नहीं रहा था। उनको यदि कोई शारीरकादि दुःख आता हो तो उसको वे यज्ञानुष्ठानादि से ही निवारित कर देते थे। इस प्रकार त्रेतायुग के तीन पाद तक चले जाने के बाद चतुर्थपाद आते ही लोगों की इच्छा और रुचि भिन्न भिन्न होने लगी। काल क्रम से मनोवृत्तियाँ भिन्न होने के बाद प्रवृत्तियाँ भी भिन्न होती ही हैं। उनसे क़ाल भी विपरीत समझा जाता है।

ततः प्रभृति साङ्कर्यं जनेष्वासीत्प्रसंगतः। रक्षाकर्मसु युक्तानामप्यार्त्विज्येऽभवद्रुचिः ॥१४॥
ऋत्विजामपि केषांचित्क्षात्रकर्मरुचिस्तथा। वाणिज्यादिषु युक्तानामन्यकर्मरुचिस्तदा ॥१५॥
कायक्लेशकरे कृत्ये विवादः समजायत। राज्ञः [illegible]सु युक्तानां नियोगोऽपि सुदुष्करः ॥
तदाऽन्यस्तं परित्यज्य भिन्नं कर्म चिकीर्षताम्। [illegible]टवमप्यासीन्महत्कार्यनिरोधकम् ॥
तदेतत्सर्वमालक्ष्य वक्ष्यमाणान्यहेतुना। भाव्यनर्थव[illegible]दे[illegible]पि जन्मकर्मव्यवस्थितिम् ॥१८॥
याज्ञिकाः कल्पयामासुरात्मसात्कृत्य भूपतीन्। सा च[illegible]क्रमेणाशु जातिरूपमधारयत् ॥

उसके बाद लोगों में प्रवृत्ति साङ्कार्य हो गया था। प्रजापालन करने

वालों को ऋत्विक् कर्म करने की तथा ऋत्विक लोगों की रक्षाकर्म में इच्छा हो गयी और व्यापारियों को भी दूसरे-दूसरे कामों की इच्छा पैदा हुई। काय क्लेश कर्मों के करने में विवाद पैदा हो गया था। अतः जनता को तत्तत्कार्यों में नियुक्त करवाने में राजाओं को भी कठिनाई हो गयी थी। अभ्यस्त कर्म छोड़कर दूसरे कर्म करने में लोगों को भी निपुणता नहीं रहती थी। अतः वे, सब कामों को ठीक कर नहीं पाते थे और कहीं-कहीं विगाड़ भी देते थे। ये सब देखकर आगे कथित हेतु से और भावि अनर्थ के हेतु से याज्ञिक लोग तत्कालिक राजाओं को वश में रखकर जन्म से कर्म व्यवस्था (वाप जो-जो काम करता हो उसका लड़का भी वही काम करे न कि दूसरा) कर दिये थे। वह व्यवस्था काल क्रम से जाति प्रथा के रूप में परिणत हो गयी थी। तब से आगे के लोग यागादि को छोड़कर नौकरी इत्यादि करते हुए भी, अपने को ब्राह्मण इत्यादि कहने लगे जो बिलकुल वेदशास्त्र विरुद्ध है।

जनकान्वयसम्भूतो जनको नाम भूपतिः। तदानीमभवन्मन्दबुद्धिस्तेनेदमादृतम् ॥२०॥
नमित्तान्तरमप्यत्र जातं कालवशात्तदा। तदप्यद्य प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयो मुदा ॥२१॥
याजकानां सुताः शूद्राः समुत्पन्ना विधीच्छाया। तेन वेदादि शास्त्रेषु नासीत्तेषां गतिस्तदा
वैपरीत्येन शूद्राणां पुत्रा ब्राह्मणसत्तमाः। जातास्तेन वेदेषु गतिस्तेषामकुण्ठिता ॥२३॥
मिथिलायां तदैकत्र पण्डितानां सभाऽभवत्। तत्र शूद्रसुता गत्वा वेदगोष्ठयां तु याजकान्
जितवन्तः सभामध्ये सर्वराजविराजिते। राजदत्तान् पुरस्कारानपि ते समवाप्नुवन्। २५।
अस्मत्पुत्रा विजेतारौ मूर्खा वश्च सुतास्त्विति। उक्तवत्सु च शूद्रेषु मूर्च्छितास्तत्र याज्ञिकाः
शूद्रवाक्शल्यहृद्विद्धाः पुच्छे पादाहताहिवत्। जन्मजाति व्यवस्थां ते सहसाऽस्थापयन् भुवि
ततस्तत्समये यद्यत्कर्म पित्रा कृतं स्वतः। तत्सन्ततिस्तदेवाग्रे कुर्यादित्यादिशन्नृपः ॥२८॥
मूर्खो मूर्खतरो वाऽपि विप्रपुत्रो हि वैदिकः। शूद्रपुत्रस्तु विज्ञोऽपि तदा विद्याबिहिष्कृतः
तेन तत्कालिको धर्मव्याधो नाम महामतिः। मांसविक्रयणं चक्रे स्वयं तदप्य भक्षयन् ॥
नायं धर्मो नवा लोकन्यायश्चास्यां व्यवस्थितौ। तथापि स्वीकृता स्वार्थ-सिद्धये क्षुद्रबुद्धिभिः
सामान्यतः स चादेशो दुर्वार्यत्वेन स्वीकृतः। तथापि तापसेष्वस्य न प्रवृत्तिरभूत्तदा ॥३२

ब्रह्मज्ञानी जनक के वंश में जनक नामक एक मन्दबुद्धि राजा पैदा हुआ और वही उस कल्पित वर्णव्यवस्था को मान लिया था। ऐसी व्यवस्था करने में और एक कारण हो गया [illegible] स को मैं अभी बताना चाहता हूँ। ईश्वरेच्छा से याज्ञिकों के शूद्र पुत्र [illegible]। अतः उनको वेदशास्त्र पढने में रुचि नहीं हुई और उस के विपर[illegible] शूद्रों को ब्राह्मण पुत्र पैदा हुए और उनको वेदों के पढने में रुचि भी हो [illegible] थी। उस समय मिथिला में पण्डितों की एक

सभा हुई और उस में ये शूद्रों के पुत्र राजाओं के सामने पण्डितों को शास्त्र-गोष्ठी में हरा दिये और राजाओं के दिये हुए पुरस्कारों को ले लिये थे। उस समय शूद्रों ने याज्ञिकों से कहने लगे कि हमारे पुत्र बिजयी हो गये और तुम्हारे पुत्र सब मूर्ख ही ठहरे। ये वाक्य याज्ञिकों के हृदय में शूल की तरह लग गये और थोड़े देर तक मूर्च्छित भी हो गये थे। धीरे२ होस में आकर वे उस राजा को वश में करके जन्मसिद्ध जातिव्यवस्था को स्थापित कर दिये थे।

अतः पिता का काम पुत्रों को अवश्य करना पड़ा था और इससे ब्राह्मण पुत्र मूर्खातिमूर्ख होने पर भी अपने को वैदिक द्विवेदी और चतुर्वेदी इत्यादि कहने लगे और बुद्धिमान शूद्रपुत्रो भी वेदविद्या से बहिष्कृत कर दिये गये थे। अतएव उस समय के धर्मव्याध को भी मांस बेचना पड़ा जिसे वह स्वयं नही खाता था। इस प्रकार का अन्याय न शास्त्रीय धर्म था न कि लोकन्याय भी था तो भी स्वार्थपरायण लोग उसे मान लिये थे। वह वर्णव्यवस्था सामान्यतः सब लोगों के लिये अनिवार्य होने पर भी तपस्वी लोगों में लागू नहीं हुई थी।

श्रुतिस्मृत्यादिकं सर्वं–भुक्तिमुक्तिप्रदर्शकम्। संग्रहेण पुरा प्रोक्तं समदर्शिमहर्षिभिः।३३॥
तत्सर्वं स्वानुकूल्येन जन्मजाति कथान्वितम्। कृत्वा सर्वजनान् ते हि पाठयन्ति स्म याज्ञिकाः
सा प्रथा गर्हितैवासीत्पश्चादुत्तरवर्तिभिः। राजभिर्गुणदोषज्ञैः सत्यवर्त्मन्यवस्थितैः।।३५॥
तत्राहिंसेशभक्त्यात्मशान्ति-सत्यादि–बोधकम्। वाक्यजातं महर्षीणामुक्तिरित्यवधार्यताम्।
जातिभेदं प्रकल्प्यैकजातेरुच्चत्व-सेव्यते। तदन्यजाति-नीचत्व - सेवकत्वादिकं तथा ३७।
जन्मतो ब्राह्मणत्वादि-वर्णसिद्धिं गवादिवत्। बोधयद्वाक्यजातं हि याज्ञिकैः परिकल्पितम्
तादृग्मिथ्या कल्पनानामत्याधिक्यं कलौ युगे। तेन जातिप्रथा-भाषा-मतभेदाः प्रवर्धिताः॥
गते कलियुगे तार्वा॰क किं नास्तिक याज्ञिकैः। कल्पितं तेन किं जातं तमनर्थं वदामि वः
भवन्तस्तेन चागामिकलावप्यूहितुं क्षमाः। शृण्वन्तु धूर्तराजैस्तैरानीतां देश-दुर्दशाम् ४१।
प्राक् कृतादियुगेऽध्यात्मचिन्तकैस्तापसोत्तमैः। संसारबन्ध विच्छित्ति पृष्टाः सिद्धमहर्षयः
तदुपायान् सङ्ग्रहेण सत्याहिंसा-दयादमान्। दैवभक्त्यार्जवज्ञान-कर्मेन्द्रिय-जयादिकम्॥
प्रोक्तवन्तः सदा सर्वभावानुद्दिधीर्षवः। तच्छ्रुत्वा मुनिभिस्तालपत्रेष्वालिख्य रक्षितम्॥
तत्सर्वं प्राप्य कालेन कलौ धूर्तपुरोहिताः। स्वीयो[illegible] स्तत्र संयोज्य सर्वं तत्पर्यवर्तयन्॥
एवं धुर्तेषु कुर्वत्सु को वा स्यात्तन्निरोधकः। स[illegible] पालयत्सु सद्राजसु गतेषु च ४६॥
ततो महर्षिनाम्नैव श्रूयमाणेष्वपि क्षितौ। धर्मश[illegible]त्र जन्मजात्युच्चनीचता॥ ४७॥

इधर याज्ञिक लोग, श्रुति स्मृति औ[illegible] इतिहासादियों में स्वानुकूल जन्म जातिव्यवस्था समर्थक कथाओं को मिला[illegible] देये और उन सब को महर्षि-

कर्तृक समझा कर लोगों को पढाने लगे। वह व्यवस्था वाद में गुणग्राही राजाओं के द्वारा निन्दित भी हो गयी और क्रम से वह नष्ट भी हो गयी थी। वैदिक पण्डितों के द्वारा परिवर्तित उन श्रुति स्मृति आदि में भी जो अहिंसा ईश्वर भक्ति और आत्मशान्ति आदि के बोधक वाक्य हैं वे सब, आदि महर्षियों के ही थे और मनुष्यों में अवान्तर जातिभेद और उच्चनीच भावों के बोधक वाक्य सब स्वार्थी पण्डितों के कल्पित समझना चाहिये। ऐसी मिथ्या कल्पनायें प्रायः कलियुग में ही अधिकतर होती रहती हैं और उन से जाति मत और भाषाओं के भेद भी बढ़ जाते हैं। गत कलियुग में ये निरीश्वर मीमांसकों ने जो जो मिथ्या रचनाये किये और उनसे जो २ अनर्थ आये उनको भी मैं अभी बता रहा हूँ जिस से आप भावि कलियुग की परिस्थिति को भी समझ सकें। पहले कृतादि युगों में तपस्वी मुनियों ने संक्षेप से सत्य अहिंसा दैवभक्ति और ज्ञानकर्मेन्द्रिय निग्रह आदिको सर्वमानव कल्याण के लिये बताया था और उन उपदेशों को प्रश्नकर्त्ता मुनियों ने ताल पत्रों में लिख कर सुरक्षित रखा था। उनको कलियुग के वे धूर्त पण्डितों ने पाया और उन महर्षियों के उपदेशवाक्यों को भी मिला कर अपने रचित श्लोकों से नये २ ग्रन्थ उन मन्वादि ऋषियों के नाम से बनाये और उन्हीं को सब जनता और राजाओं को पढाते थे। मूर्ख जनता उन ग्रन्थों को असल मन्वादि रचित समझ कर अपने को नीच जाति मान ली और शास्त्रविद्या से दूर हो गयी थी। धार्मिक राजाओं के मर जाने के बाद उन दुष्प्रचारों को रोकने वाला भी नहीं रहा अतः उस समये में जो२ स्मृति और पुराणादि उपलब्ध (मिलते) थे उन सब में प्रायः जन्म जाति उच्चनीचता का समाचार ही मिलता था।

विद्याविरागता ब्रह्मध्यानेन्द्रियजयादिकम्। सर्वसाधारणत्वेन तैर्यदुक्तं महर्षिभिः ॥ ४८ ॥
तत्सर्वं ब्राह्मणस्यैव सुवर्णस्य सुगन्धवत्। तदब्राह्मणनिष्ठं चेत् श्वदृतिधृतदुग्धवत् ॥४९॥
स्वात्मसेवकबाहुल्यसम्पिपादयिषादिना। विप्रशूद्रौ कलौ वर्ण-द्वयमेवेत्यपीरितम् ॥५०॥
ब्राह्मण्यं जन्मतो ज्ञेयं साध्वसाध्वपि कुर्वताम्। भूदेवाः पूजनीयास्ते तोषणीयाश्च राजभिः
विश्वमात्रे विद्यमानं धनं नानाविधं सदा। ब्राह्मणस्यैव तत्सर्वमन्यस्य तदनुग्रहात् ५२
ब्राह्मणेन तदन्यैश्च प्रत्यहं भुज्यते हि यत्। तत्सर्वं ब्राह्मणस्यैव धर्मतस्त्विति कल्पितम् ५३
विप्राणामेव सेवार्थमीश्वरेण महीभृ[illegible] विविधाश्च जनाः सृष्टास्तस्मात्ते तां प्रकुर्वताम्
पशून् व्यापाद्य यज्ञेषु व्याघ्रवद्भक्षणे[illegible]। स्वर्गे रंभादिसंभोगः संभवेदिति कल्पितम् ५५
सर्वहन्ताऽपि विप्रो न हन्तव्यः कि[illegible]तः। स्वसम्पदा बहिष्कार्यो येन तत्राप्यसौ तथा ५६
भूहिरण्यान्नपानार्घ्यप्रदानैः सर्व[illegible]नाः। राजानश्चापि सेवन्तां ब्रह्मवंशसमुद्भवान् ५७
भोजितोऽपि पुनर्भोज्यो ब्राह्मणोऽन्न[illegible]णः पुनः। क्षुत्पिपासापीडितोऽपि नैव भोज्योऽल्पज्ञोऽपि सः

जन्मतो ब्राह्मणो ज्ञेयो न संस्कारादिसद्गुणैः । गौर्दुष्टाऽप्यर्चनीयैव गर्दभादुत्तमादपि ५९
एवं विधानि वाक्यानि कल्पितानि वहून्यपि । तद्धेतुकामजानद्भिर्भावि भारतदुस्थितिम् ६०
स्वस्य स्वकीयमात्रस्य सर्वथोत्कर्षगृघ्नुभिः । तदन्यसर्वनाशेऽपि स्वीयकुक्षिप्रपूरकैः ६१
अस्मत्कल्पितशास्त्रानुसारिराजभिरेव भूः । पालितेयं भवेन्नित्यमस्मद्भोगैकसाधनाः ६२
जनाः सर्वेक्रियेरैस्तैर्यथा पश्वादयो नृणाम् । इत्याद्यालोच्य तत्सर्वं देशद्रोहाय कल्पितम् ६३
न वाक्य कल्पनामात्रं किन्त्वप्याचरितं तथा । राजदण्डभयेनान्यान् भीषयित्वा सदा जनान्
गुणग्राहित्वमत्यल्पमपि नासीद्द्विजेषु हि । अपूज्यानां सुसत्कारःपूज्यानां च तिरस्क्रिया
तेन सर्वत्र राष्ट्रेऽस्मिन्ननावृष्ट्यतिवृष्टयः । जनेषु रोगवाहुल्यमुत्पातादिभयं क्वचित् ६६

उन महर्षियों ने सार्वजनिक हित के लिये जो विद्या विराग और इन्द्रिय निग्रहादि के उपाय बताये थे वे सब यदि ब्राह्मण में रहेंगे तो सुवर्ण में सुगन्ध की तरह होंगे और अब्राह्मण में रहेंगे तो वे श्वदृति (कुत्ते के चमड़े की झोली) में डाला हुआ गोदुग्ध के समान बताये गये थे। अपने सेवकों की संख्या बढ़ाने के ध्येय से वे स्वार्थी पण्डित कलियुग में ब्राह्मण और शूद्र ये दो ही जातियाँ हैं ऐसा भी वताये थे। अच्छे या बुरे काम करने पर भी जन्म से ही ब्राह्मण होते हैं। अतः राजा और जनता उनको अच्छी तरह पूजा करें। देश भर में सबके पास रहने वाला सब प्रकार का धन ब्राह्मण का ही है। ब्राह्मण के अनुग्रह से ही दूसरे धन पाते हैं और ब्राह्मण और दूसरे भी प्रतिदिन जो कुछ खाते हैं वह सब ब्राह्मण का ही है। ब्राह्मणों की सेवा के लिये ही ईश्वर सारी जनता को पैदा करते हैं।

अतः वह उनकी सेवा करें। यज्ञों में निरपराधी पशुओं को मार कर खाने से स्वर्ग में रंभादि सम्पर्क मिलेगा। ब्राह्मण सबको मारने वाला होने पर भी राजा उसको न मारे किन्तु उसकी सम्पत्ति के साथ उसको अपने देश से बाहर करदेना चाहिये जिससे वह देशान्तर में जाकर भी वैसा बदमासी कर सके। ब्राह्मण को ही भोजन देना चाहिये चाहे वह भोजन किया भी हो, और भूख से मरने पर भी दूसरे को भोजन नहीं देना चाहिये। जन्म से ही ब्राह्मण होते न कि संस्कारादि से और गाय दुष्ट होने पर भी गधा सेश्रेष्ठ है। ऐसे बहुत सी वाक्य कल्पित किये गये। उनके कल्पकों को यह मालूम नहीं था कि भावि भारत में ऐसी वाक्यों से कैसी दु[illegible]ति पैदा होगी। सिर्फ वे इतना ही जानते थे कि हमारे कल्पित वाक्यों [illegible] मानने वाले राजा ही हमेशा भारत के शासक रहेंगे और सारी जनता [illegible] वे हमारी और हमारे भावि सन्तति की सेवा करवायेंगे। गुण ग्राहित्व तो कुछ भी नहीं रहा था अपूज्य व्यक्ति की ही जाति दृष्टि से पूजा और पूजनीय व्यक्ति का तिरस्कार भी होता

था। उससे देश में अतिवृष्टि अनावृष्टि भी होते थे और जनता में रोग पीड़ा भी अधिकता से रहती थी।

ब्राह्मण्यं जन्मत इति (५१) तदुक्तं वर्तमानकलियुगात्रिस्मृतौ "जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विजउच्यते" इति १४०। वर्तमान पद्मपुराणे च "सच्छ्रोत्रियकुले जातो ह्यक्रियो नैव पूजितः। असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाण्डकौ यथा" क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽस्ति मत्समः। वेश्यापुत्रो वशिष्ठश्च अन्ये सिद्धा द्विजातयः "(सृष्टिखण्डे अ० ४८।२६-७) इत्युक्त्वाऽग्रे लिखितम्,, जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैः द्विजउच्यते। (१२८) इति। पुनस्तत्रैव प्रोक्तम् "यस्य कस्य कुले जातो गुणवानेव तैर्गुणैः। साक्षाद्ब्रह्ममयो विप्रः पूजनीयः प्रयत्नतः" (१४४) इति। गुणवानेव साक्षाद्ब्रह्ममयो विप्रो भवति। तैर्गुणैर्हेतुभिः पूजनीय इत्यन्वयः। पुनरग्रे चोक्तम्। "कदाचित्क्रियते पापं विप्रैःपापैर्नलिप्यते। चाण्डालस्य गुहे निष्ठौ भास्करज्वलनौ यथा" (१५२) इति। एताभि-परस्परविरुद्धोक्तिभिरत्रैव स्पष्टं ज्ञायते यदेषु १२८, १५२ श्लोकौ कल्पिताविति। विश्व-मात्रे इति (५२) तदुक्तं साम्प्रतमनुस्मृतौ "सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्। ज्येष्ठ्येनाभिजनेनेदंसर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च। आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीरते जानाः (१।१००-१) इति। एतदपि लोकवेदविरुद्धत्वेन स्ववचनविरोधेन चोपेक्षणीयं भवति। लोकविरोधस्तावत् सर्वस्य धनस्य ब्राह्मणस्वामिकत्वेऽन्येभ्यो वस्तुरूपेण धनरूपेण वा ऋणं गृहीत्वा ब्राह्मणः पुनर्न प्रत्यर्पणेऽपि कृतकृत्यः प्रत्यवायरहितो भवेत्। स्वकीयधनस्य परहस्तङ्गतस्य केनापि उपायेनाहर्तुं युक्तत्वात्। तेन च न कोऽप्यब्राह्मणो ब्राह्मणाय ऋणादिकं दद्यादिति लोक-यात्राभङ्गएव स्यात्। वेदविरोधश्च "ब्रह्म वै ब्राह्मणस्य स्वम् (१। १०) इत्यत्र। अत्रहि ब्राह्मणस्य ब्रह्मैव वेद एव स्वं धनमिति ज्ञायते। एवं स्ववचनविरोधोऽपि "ब्रह्म चैव धनं येषां कोहिंस्यात्तान् जिजीविषुः" (९।३१६) इत्यत्र। अपिच सर्वं स्वं यदि ब्राह्मण-स्यैव तदाऽब्राह्मणैर्ब्राह्मणेभ्यो धनधान्यादिदाने पुण्यं भवतीति वदन्ति सर्वस्मृतिपुराणादिवा-क्यान्यसङ्गतार्थानि स्युः। यतः स्वकीयधनस्य परेभ्यो दाने पुण्यं न तुपरकीयधनस्य।

मांसभक्षणचापल्याद् यज्ञादिव्यपदेशतः। पशून् घ्नन्ति स्म दुष्टास्ते बहून् व्याघ्रादिजन्तुवत्
हिंसादुःखवशान्मूकजन्तवस्तान् शपन्ति च। तेन ते याज्ञिका यज्ञपशवस्ते च याज्ञिकाः॥
पुनस्ते यज्ञशालायां नीयमाना भृशं वपुः। कम्पयन्तो मलं मूत्रमवशाद्विसृजन्ति ते॥६९॥
प्राणिनस्तूच्चनीचादि-योनिषु चक्रनेमिव[illegible]भ्रमन्ति स्वीयकर्मानुसारेणैवेश्वरेच्छया॥७०॥
विप्रब्रुवैर्षितं सर्वमन्येभ्यो गृह्यते बला[illegible]तः सर्वविधं द्रव्यं तेषामेवेति धारणा॥७१॥
स्वात्मसेवां कारयन्तः सेवकेभ्योऽपि[illegible]म्। भृतिं यच्छन्ति तेनैव गर्वेणैते नराधमाः॥
तदृणस्य निवृत्त्यर्थमीश्वरेण प्रचोदि[illegible]। शूद्रा जन्मान्तरे विप्रपुत्रत्वेनोद्भवन्ति हि॥७३॥
पूर्वसंस्कारहीनत्वाद्धेतोस्ते विप्रवे[illegible]षु। वेदस्याध्ययनेऽशक्ता रमन्ते बाह्यकर्मसु॥७४॥

अस्पृश्यत्वेन संख्याता मध्याह्ने कार्यहेतुना । ग्रामे गच्छन्ति चेद्दण्ड श्रुतिश्रावे मृतिर्ध्रुवा ७५।
एवं मृतानां म्लेच्छानां शापेन श्रोत्रियाः पुनः । म्लेच्छादिवेशमसूत्पद्य क्षालयन्ति स्म पुंमल
तदा प्राग्जन्मसंस्काराच्छ्रुतिं श्रुत्वा द्विजास्यतः । प्रत्युच्चरन्ति सुस्पष्टं सस्वरामपिनेऽत्यजा
एवं म्लेच्छेषु धीमत्सु मूर्खेषु ब्राह्मणेषु च । सत्स्वन्योन्यं हि सङ्घर्षस्तूच्चनीचत्वसाधकः।
धूर्तकल्पित धर्मोपदेशेन नृपतीन् द्विजाः । वशीकृत्य बलादन्यान् दण्डयन्ति स्म निष्ठुरम्।
एवं संक्लेशिताः केचिद्ग्रामे ज्ञात्वा द्विजोचितम् । गोत्रादिकमगच्छंस्ते काश्यादौ म्लेच्छशब्दि
नामगोत्रदिकं स्वीयं पृष्टास्तत्राब्रुवन् द्विजैः । स्वीयग्रामद्विजश्रेष्ठनामगोत्रादिकं स्फुटम् ॥८१॥
वैदिकं मन्यमानानां गृहे भूत्वाऽपि पाचकाः । साङ्गवेदान् पुराऽभ्यस्तान् पुनरभ्यस्य तत्सुताः
ऊढ्वोत्पाद्य सुतान्तासु स्वीयम्लेच्छत्वगोपनम् । ब्राह्मण्यं जन्मनैवेति गर्जयन्तः प्रकुर्वते ।
पश्चाज्ज्ञातेऽपि म्लेच्छत्वे तदीयश्वशुरादयः । ब्रुवतेऽयं तु सद्विप्रो जानीमोऽस्य पितामहम्।
तेऽपि स्वीयस्थितिं ज्ञात्वा कदाचिद्वयमप्युत । अभूमैतादृशाः पूर्वमित्यग्रे विस्मरन्ति तत् ।
यैर्विस्मृता स्वकीया प्राक्स्थितिस्ते ह्येव विस्मयम् । प्रकाश्य परिनिन्दन्ति परोक्षे तं नरंनरा।

मांस भक्षण के लालच से यज्ञादिको निमित्त बनाकर वे दुष्ट याज्ञिक व्याघ्रादि की तरह बहुत से पशुओं को मारते थे। हिंसा दुःख के कारण वे मूक जन्तु मरते समय मारने वालों को शाप देते थे। और उससे वे याज्ञिक दूसरे जन्म में यज्ञपशु बन जाते थे और ये मरे हुए पशुगग याज्ञिक बन जाते थे। फिर जब वे याज्ञिक इन पशुओं को यज्ञशाला में मारने को ले जाते थे तब वे पशु काम्पते हुए मल मूत्र छोड़ देते थे। गाड़ी के चक्रों की आरियों की तरह सभी प्राणि पूर्वकृत कर्म के अनुसार उच्च नीच योनियों में घूमते रहते हैं। ब्राह्मण नाम धारी को जो कुछ आवश्यक हो वह सब दूसरों से जबर दस्ती छीन लिया जाता था, क्यों? उनकी यह धारणा है कि सब प्रकार का धन और चीजें हमारी ही हैं। उसी गर्व से वे अपने यहाँ काम करने वाले मजदूरों को भी उचित मजदूरी देते नहीं रहें। उसी ऋण निवृत्ति के लिये ईश्वर प्रेरित होकर वे मजदूर दूसरे जन्म में उन ब्राह्मणों के पुत्र के रूप में पैदा होते थे और पूर्वजन्म के विद्यासंस्कार का अभाव से उनको वेदाभ्यास में रुचि और सामर्थ्य भी नहीं रहती थी। अतः वे बाह्यः स्थूल कार्यों में ही लग जाते थे। जो अछूत माने जाते थे वे दोपहर को कार्यवश गाँव में जाकर वेद, जो विप्रों के घरों में पढाया जाता था, सुनेंगे तो [illegible]को मरण दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार जो २ मर जाते थे उनके [illegible]ालीन शाप से दण्ड दिलाने वाले ब्राह्मण, दूसरे जन्म में म्लेच्छों के घरों में [illegible] हो जाते थे और जब वे सफाई करने के लिये सबेरे गावों में जाते थे, त[illegible] ब्राह्मणों के घरों में वेदपाठ सुनकर ऐसा पूर्वजन्म संस्कार रहने से वे उसे याद भी कर लेते थे। इस प्रकार

जब म्लेच्छ बुद्धिमान् और ब्राह्मण मूर्ख हो जाते थे तब उनमें उच्च नीच भाव के लिये आपस में बड़ा सङ्घर्ष हो जाता था। ब्राह्मण कहते थे हम जन्म से बड़े तुम जन्म से नीच हैं। वे बुद्धिमान् म्लेच्छ कहते थे कि यह तुम्हारी कल्पना है न कि ईश्वर की। ईश्वर और शास्त्रों की दृष्टि में जो बुद्धिमान है वही बड़ा है। इधर राजा भी जन्मजाति प्रथा के भ्रम में पड़कर ब्राह्मणों की बात मान लेते थे और म्लेच्छों को कठिन दण्ड देते थे। इस प्रकार दुःखित होकर कुछ म्लेच्छ काशी इत्यादि पुण्यक्षेत्रों में चले जाते थे और ब्राह्मणनाम गोत्रादि बता कर वहाँ वैदिक पण्डितों के घरों में पाचक (भण्डारी) बन जाते थे और साङ्गोपाङ्ग वेद पढ कर उनकी लड़कियों से शादी भी कर लेते थे। प्रसङ्ग आने पर वे अपने म्लेच्छत्व को छिपाने के लिये ब्राह्मण जन्म से ही होते हैं ऐसा उच्चस्वर से बोलते थे। कालानुसार जब कभी उनका म्लेच्छत्व प्रकट होने लगता है तो उनके ससुर दूसरों से बोलते थे कि यह हमारा जामात अच्छा ब्राह्मण है और इसके पितामह को हम अच्छी तरह जानते भी हैं। वे दूसरे ब्राह्मण भी अपनी पूर्वस्थिति को याद करके "हम भी एक समय में ऐसे ही रहते थे समझकर उस पर आश्चर्य प्रकट नहीं करते थे। जो लोग अपनी पहले की परिस्थिति को भूल गये और अपने को ब्रह्ममुख से उत्पन्न सन्तति समझते थे, वे ही उनके परोक्ष में आश्चर्य प्रकट करते थे"।

केचित्स्वीकृत्य संन्यासं सन्मानादि प्रलोभतः। जन्मब्राह्मणवादेन द्योतयन्त्यात्मनोऽपि तत्.
यावदुच्च स्वरेणैते जन्मविप्रत्वसाधने। गर्जयन्ति स्म तावत्तच्छिष्टविप्रत्व-विभ्रमः ॥८८॥
तेन भारतमूर्खास्तान् पादस्पर्शादि-पूर्वकम। पूजयन्ति स्म वस्त्रान्न-दक्षिणाभिश्च सन्ततम्
कश्चिदुत्तम-संन्यासी द्विजत्वं शास्त्र-सम्मतम्। यदि ब्रूयात्तदा मूर्खास्त्वद्विजं तंच मन्वते॥
घूर्णयन्तस्ततो दृष्टिं पाखण्डजाति वादिनः। भिक्षामपि न यच्छान्तस्तूपेक्षन्ते च सद्यतिम॥
एतन्महाभयेनैव शिष्टाः केचिन्मनीषिणः मताचार्याश्च याथार्थ्यं न वदन्तिस्म कुत्रचित्॥
अपरे चान्यदेशेषु वेदशास्त्र-विरोधिषु। गत्वा तानाह्वयामासुराश्वास्य तत्सहायताम् ९३॥
म्लेच्छशूद्रादिसंज्ञाभिर्ये निन्द्यन्ते स्म भारते। तेऽपि स्वीकृत्य पैशाचं मतं ध्वंसन्ति वैदिकम्
आत्मरक्षार्थमाहूताः पश्चान्मन्दिर-भञ्जनम्। पैशाचमतय श्चक्रु र्वेदशास्त्र प्रदाहनम् ९९॥
जीवतां चर्मनिष्कास्य बहून् भारतभूपतीन् ब्राह्मणादीन् नाशयित्वा राजानस्तेऽभवन् स्वयम्
नाशावशिष्टाः केचित्ते त्यक्त्वा स्वीयं मतं शनैः। तदीयमतमाश्रित्य पीडयन्ति स्म भारतान्
संस्कृतं वेदशास्त्राणि प्रणाश्यैते स्वभारती[illegible]। वर्धयन्ति स्म तामेव पठन्त्यन्येऽपि भारताः॥
मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्धृत्वोक्त्वा च तथेतरे[illegible] प्रभुवाः प्रजीवन्ति ग्रामकूपस्थभेकवत् ॥९९॥
सर्वमेतज्जन्मजातिव्यवस्थायाः फलं [illegible]भुञ्जानाः स्वापराधं ते न जानन्ति स्म दुर्भगाः
अनन्यशरणाः स्वात्मत्राणे ते कलिपू[illegible]। प्रतीक्षन्ते स्वात्महस्तबद्धनेत्रांधदृष्टयः ॥१०१॥
भारतानन्यदेशीयाः सर्वान् पश्यन्त्य[illegible]तिवत्। विप्रांस्तु कीटवच्चैव एषा भारतदुर्दशा॥

कुछ म्लेच्छवंशज संन्यास लेकर पूजा सन्मानादि के लोभ से ब्राह्मणादि वर्ण जन्म से ही होते हैं ऐसा प्रचार करते थे जिससे अपने को जाति भ्रम वाले लोग जन्म सिद्ध ब्राह्मण समझ सके। जितने उच्च स्वर से वे जन्म जाति प्रथा को समर्थन करते थे मूर्ख जनता उनको उतना शिष्ट ब्राह्मण मानती थी और उनको अच्छे अन्नवस्त्रादि देकर पूजा करते थे। यदि कोई उत्तम संन्यासी शास्त्र सम्मत ब्राह्मण का स्वरूप बताने लगे तो मूर्ख लोग उसको अब्राह्मण समझते थे और उसको भिक्षा भी नहीं देते थे। इसी प्रकार के भय से कुछ शिष्ट पण्डित और मताचार्य भी शास्त्रसम्मत ब्राह्मणत्वादि को जानते हुए भी उसको बाहर नहीं बताते थे और कुछ लोग उसके विपरीत, जन्म से ही वर्ण सिद्धि बताते थे। अतिरिक्त बुद्धिमान म्लेच्छवंशज विदेशों में चले गये और वहाँ के पाखण्ड सिद्धान्त वालों को अपनी रक्षा के लिये अधिक संख्या में बुला लाये थे और ये सभी उस पाखण्ड मत को स्वीकार करके यहाँ के वैदिक मत की निन्दा करते थे और मठ मन्दिरों को तोड़ फाड़ कर देते थे और यहाँ के राजाओं को भी जो जाति प्रथा को प्रोत्साहन देते थे, जीते जीते चमड़े निकाल कर वे स्वयं राजा बन गये थे। इस प्रकार के नाश से जो बच गये वे भी धीरे धीरे अपना मत छोड़कर विदेशीय मत को स्वीकार कर लिये और हमेशा भारत के बाधक बने रहते थे। संस्कृत और शास्त्रों का नाश करके वे विदेशी शासक अपनी भाषा और मतग्रन्थों का प्रचार करते थे। जाति प्रथा वाले कुछ ब्राह्मण मन में एक और बाहर दूसरी बात कहते हुए कूपस्थ मण्डूक की तरह जीवन बिताते रहे और अपनी रक्षा के लिये अनन्यशरण होकर कलि पुरुष की प्रतीक्षा करते थे। उनका यह भ्रम रहता था कि वह कलिपुरुष अपनी पाखण्डता को मान कर दूसरों को दण्ड देने वाला होगा।

एतस्मिन् संकटे कश्चिन्महात्माऽवततार हि। पुनर्भारतस्वातन्त्र्यमानिनीषुस्तदा कलौ १०३
स्पृश्यास्पृश्यादिभेदेन विप्राविप्रप्रभेदतः। मिथो द्रोहि स्वदेशीयानेकत्री कृत्य पितृवत् १०४
शान्त्या दान्त्या च सौजन्यनीत्या सत्येन संगरम्। कृत्वा च परदेशीय-शासकैस्तानितो बहि
निष्कास्य भारतेऽवान्तर्नृपान् भूस्वामिनस्तथा। वैषम्यापादकावान्तर्जातिभेदप्रवर्धकान्१०६
निर्मूल्य भारते सर्वजनता-तन्त्रशासनम्। संस्थाप्य निजकर्तव्य-पूर्तौ गतः स्वधाम सः॥
तत्रादौ शासकत्वेन ये सर्वजनतावृताः। ते [illegible]त्कालपर्यन्तं प्रावर्तन्तोच्चदृष्टिभिः १०८
किन्तु कालक्रमेणैते नैसर्गिककुवासनाः। ना[illegible]सकाः सन्ता मोषका एव तेऽभवन्॥
देशसेवकनाम्ना ते शतशश्च सहस्रशः। वेतन[illegible]दि[illegible]श्चापि भ्रष्टाचारा भवन्ति ते ॥११०॥
सामुदायककार्यार्थं नियुक्ता राष्ट्रवित्ततः। जनेभ्यो[illegible]रुत्कोचं तदर्थमपि गृह्णते ॥१११॥
शोषयित्वा स्वदेशीयान् नाशयित्वाऽपि भारतम्। [illegible]स्वकीय-प्रवृद्ध्यर्थं गर्हितं कुर्वते स्म ते

देशवासिसुरक्षार्थं रक्षकत्वेन निर्मिताः । विस्मृत्य ते स्वकर्तव्यं प्रायः प्रत्यक्षराक्षसाः ११३
स्वतन्त्र भारते प्राग्वत्संस्कृतोन्नतिवांञ्छया । विश्वविद्यालयान् राष्ट्रे संस्थाप्यापि तदुन्नतिम् ॥
न कुर्वन्ति स्म बह्वर्थं तत्संचालकतृप्तये । व्ययीकुर्वन्ति तद्वृद्ध-दक्षिणाव्यपदेशतः ११५
तत्राध्यक्षादिरूपेण नियुक्ता ये कुनीतयः । तेऽपि ब्राह्मणपिण्डेभ्यो येन केनाऽपि हेतुना ११६
कृत्स्नभारतदेशीय-सर्ववित्तप्रदापने । स्वेषां पुण्यं यशश्च स्यादिति विभ्रमचेतसः ॥११७॥
संस्कृतव्यपदेशेन-व्ययीकृत्यापि किंचन । वहिः प्रदर्श्य तद्भक्तिं मन्त्रिणोऽन्यगिरं श्रिताः ॥
जातिवादिकृतान्याय्यग्रन्थसद्भाव-हेतुना । संस्कृतात्ते सदा भीताश्चक्रुरन्यां स्वभारतीम् ॥
संस्कृतं राष्ट्रभाषा चेत्तामधीत्य मिथो जनाः । जन्मनैव वयं श्रेष्ठा यूयं निकृष्टजातयः १२०
अस्मदीयं जगत्सर्वं दयया नो भवेद्धि वः । इत्येवं कलहाः स्युर्ये प्रागस्वातन्त्र्यकारकाः ॥
सदेवं चिन्तयन्तस्ते भस्त्रानिक्षिप्तदुग्धवत् । तत्यजुः संस्कृतं सर्व-श्रेयस्करमपि क्षितौ १२२

ऐसी संकट परिस्थिति में एक महात्मा जो भारत को फिर स्वतन्त्र बनवाने की इच्छा से गत कलियुग में अवतरण किये और भारत में छुआ छूत और ब्राह्मणाब्राह्मण भेदों से परस्पर द्रोह करने वाले स्वदेशियों को पिता को तरह एकत्रित करके शान्ति और सौजन्यनीति से स्वातन्त्रता संग्राम चलाया और विदेशियों को भारत से बाहर निकाल दिये थे। पहले से यहाँ रहने वाले छोटे २ राजाओं और जमीन्दारों का, जो जन्म जाति प्रथा का प्रोत्साहन देते थे, निर्मूलन किया और भारत को जनतन्त्र राष्ट्र बना कर वे अपना धाम चले गये थे। उस जनतन्त्र भारत में जो२ नेता मन्त्रि आदि के रूप में चुने गये थे, वे कुछ समय तक उच्च आदर्श दृष्ठि से और स्वार्थ त्याग से काम करते थे, परन्तु बाद में धीरे २ अपने स्वाभाविक कुवासनाओं के कारण नामतः शासक होते हुए भी क्रिया रूप में बिलकुल मोषक (चोर) हो गये थे। सैकड़ों और हजारों रुपये वेतन लेते हुए भी वे अपने को देश सेवक बताते थे और इतना लेते हुए भी वे भ्रष्टाचार छोड़ते नहीं रहे। जनता से घूस लेकर उनका काम करते थे। अपनी वृद्धि के लिये वे स्वदेश वासियों का शोषण करते थे। शान्ति स्थापित करने के लिये देश भर में जो रक्षा विभाग (पुलीस) नियुक्त किया गया था उसमें काम करने वाले प्रायः अपने कर्तव्य को भूल कर प्रत्यक्ष राक्षस के बराबर हो गये थे। पहले की तरह संस्कृत की उन्नति करने की इच्छा से विश्वविद्यालय और म[illegible] विद्यालयों को स्थापित करके भी उस समय की सरकार वैसी उन्नति नहीं [illegible] थी और वहाँ के संचालकों की तृप्ति के लिये और वृद्ध पण्डितों को [illegible] वास्ते बहुत धन खर्च करते हुए भी वह विद्यार्थियों को अधिक संख्य[illegible] छात्र वृत्ति देकर पढाने में असमर्थ रहता था। उन संस्कृत-विद्यासंस्था में [illegible]नियुक्त उच्च अधिकारी भी, ब्राह्मण पण्डितों को

किसी न किसी निमित्त से सरकार का धन दिलवाने में अपने को पुण्य और कीर्ति समझते थे। बाहर से भक्ति दिखाने के लिये संस्कृत के नाम से बहुत खर्चा करते हुए भी उस समय की सरकार संस्कृत को छोड़कर दूसरी भाषा को राष्ट्रभाषा बनवायी थी और वह संस्कृत से इस बात पर बहुत डरती थी कि संस्कृत राष्ट्रभाषा होगी तो, जातिवादियों के द्वारा मन्वादि महर्षियों के नाम से निर्मित ग्रन्थों को पढ़कर लोग हम जन्म से श्रेष्ठ हैं सारी दुनियाँ हमारी है इत्यादि बातें करते रहेंगे, उससे जातिवाद बढ़ जायगा और फिर पराधीनता हो जायगी। उसी भ्रम से वह सरकार संस्कृत को हटाकर दूसरी भाषा को मुख्य बनवायी थी और उससे प्रान्तीयता भी लोगों में बढ़ गयी थी।

तादृग्बहुविधान्यायक्लेशितेषु सदा नृषु। राजनैतिक-सिद्धान्तमत-भेदाः समुत्थिताः ॥
स्वजातिमत-भाषादि-भेदेनान्योन्यविग्रहाः। सर्वप्रान्तेषु सञ्जाताः प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ॥
सर्वेषां दर्शितानर्थ-व्रातानां मूलकारणम्। एकमेव हि मर्त्येषु जातिभेदप्रकल्पनम् ॥१२५
तद्विनाशयितुं केचिन्महात्मानोऽपि भारते। दक्षिणोत्तरभागेषु विष्णुलोकादवातरन् ॥१२६
वेङ्कटाचल - नीहारपर्वत - प्रान्तभूमिषु। कृततीव्रयपःप्राप्त-समस्त-सिद्धयोऽभवन् ॥१२७
ते तच्छिष्य-प्रशिष्यादिपण्डित - प्रवरा भुवि। जातिभेदजगद्व्याप्त - वट वृक्षांतु मूलतः ॥
श्रुतिस्मृतीति-हासादि-मन्थनोत्थचिदग्निना। प्रादाहयन् पुनर्येन प्रबोढुं नैव शक्ष्यते ।१२९
तदा ते प्रथमं वेदस्मृत्यादौ तुच्छास्वर्थिभिः। प्रकल्पितानि वाक्यानि बहिर्निष्काश्य कृत्स्नशः
सृष्ट्यादौ सिद्धसर्वज्ञ महर्ष्युक्तानिं सर्वतः। पृथक्कृत्य जनान् सर्वान् पाठयामासुरास्तिकाः
पूर्वमेतानि सङ्गोप्य जातिभेदप्रबोधकम्। विप्रब्रुवैर्वाक्यजातं श्रावितं नतु पाठितुम् ॥१३२
पाठने सर्वकल्याणकृद्वाक्यान्यपि मानवाः। विज्ञाय जन्मजात्यादि विरून्ध्युरिति तद्भयम् ॥
तत्रादौ ब्राह्मणत्वादिचतुर्जातिभिदाक्षयात्। नष्टा तन्मूलविश्वीय-नृजात्यन्तर-विभ्रमाः ॥
ततः संस्कृतभाषैका राष्ट्रभाषाऽभवत्कलौ। भुक्तिमुक्त्यर्थिभिः सर्वैः पठ्यते स्म सदा जनैः ॥
विश्वविद्यालयाः सर्वे संस्कृतैकप्रबोधकाः। जातास्तेनाल्पकालेऽत्र पाण्डित्यं समपादि च ॥
भाषाभेदप्रयुक्तोऽपि प्रणष्टः कलहोऽप्यथ। विद्याभ्यासिरपि स्वल्प वित्तेनैवाभवत्तदा ॥१३७॥
यस्मै यद्रोचते शास्त्रं वेदाः स्मृत्यादयोऽपि वा। तदेव पठ्यते तेन तत्रोक्तनियमव्रतैः ॥१३८
पूर्वसंस्कारतः केचिद्वेदेष्वन्ये स्मृतिष्वपि। प्रवीणाश्चाभवंस्तेन सर्वशास्त्रप्रचारिता ॥१३९॥
यस्य प्राक्तन-संस्कारो नास्ति शास्त्रावधारणे। स यस्य कस्य चिद्वाऽपि पुत्रः सेत्रापरोऽभवत्
येषां वेदेषु वैदुष्यप्रगतिस्ते हि कर्मसु। आर्त्विज्य[illegible] तत्र काऽपि हानिर्न कस्यचित् ॥१४१

इस प्रकार के अन्यायों से दुःखित [illegible] के बीच में परस्पर विरुद्ध राजनैतिक पार्टियाँ खड़ी हो गयी थी। कहीं के [illegible] मतभेदों से और भाषा भेदों से तो सर्वप्रान्तों में पारस्परिक कलह पैदा हो गये थे। उपरोक्त सब अनर्थों

का एकमात्र मूलकारण मनुष्यों में कल्पित अवान्तर जातिभेद ही था। धूर्तों के द्वारा कल्पित उस जाति भेद का विनाश करने के लिए कुछ महात्मा लोग विष्णु.लोक से भारत के दक्षिण और उत्तर प्रदेशों में अवतरण किये थे और वे तिरुमल तिरुपति वंकटाचल में और हिमालय पर्वतों में तीव्र तपस्या करके सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त किये थे। वे और उनके शिष्य प्रशिष्य पण्डितों ने विश्वव्यापी उस जातिभेद रूप महा वटवृक्ष को श्रुतिस्मृतीतिहासादिग्रन्थ-विचारजन्य ज्ञानाग्नि से निःशेष जला दिये थे जिससे वह फिर न उठ सके। पहले वे श्रुतिस्मृत्यादियों में से प्रक्षिप्त वाक्यों को पूरा बाहर निकाल दिये और सृष्ट्यादि में उपदिष्ट महर्षियों के वाक्यों को जिनमें जन्मसिद्ध जातिभेद बिलकुल नहीं रहा था, अलग किये और उन्हीं को सारी जनता को पढ़ाये थे, जिनको जातिवादियों ने छिपाकर केवल जातिभेद वाक्यों को ही पामर जनता को सुनाते रहे न कि पढ़ाते थे। पढ़ाने में उनका यह डर रहता था कि जनता असल महर्षि वाक्यों को भी पढ़कर जातिवाद को नष्ट कर देगी। वे अवतीर्ण महात्मा और उनके शिष्यों ने सर्वप्रथम जन्मसिद्ध वर्ण जातिभेद को नष्ट कर दिये थे और उससे तन्मूलक सभी अवांतर जातिभेद अपने आप ही नष्ट हो गये थे। उन सब भेदों का और उनसे होने वाले कलहों का नाश हो जाने के बाद, संस्कृत ही निर्विरोध भारत की राष्ट्रभाषा हो गयी थी और भारत के भुक्तिकामी और मुक्तिकामी सभी लोग, संस्कृत को ही पड़ने लगे। भारत के सभी विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा ही पढ़ाई जाती थी और उससे विद्यार्थी अल्प उम्र में पण्डित बन कर युवावस्था में ही अपने २ आश्रम कार्यों में निपुण हो जाते थे। प्रान्तीयता और भाषा प्रयुक्त कलह भी, जो पहले जोर से चलते थे पूरा नष्ट हो गये और देश भर में एक ही अनिवार्य मुख्य भाषा हो जाने से विद्या व्याप्ति करने में सरकार का भी ज्यादा पैसा खर्च करना नहीं पड़ता था और जिस का जो विषय या वेदादि शास्त्र अच्छा लगता हो उसी को वह नियमानुसार पड़ता था। पूर्वजन्म संस्कार के अनुसार कुछ लोग वेदादि धर्म शास्त्रों में और कुछ लोग योग ज्यौतिषायुर्वेदादि शास्त्रों में अनायास प्रवीण हो जाते थे और उससे सभी शास्त्रों का प्रचार भी हो जाता था। जो वेदों में पण्डित होते थे वे ही, चाहे [illegible] किसी के भी घर में पैदा हुए हो, यज्ञादि में ऋत्विक बनते थे। इससे किसी का [illegible] कुछ हानि नहीं होती थी।

प्राग्ये पाखण्ड सिद्धान्ते प्रविष्टास्ते दु[illegible]म्। मतमाश्रित्य जात्यादि-प्रथानाशान्निराकुलाः
सस्यनुकूलवृष्ट्या च सर्वमानवशान्तिः[illegible]। कृतादाविव न व्याधिर्नाप्याधिर्वा नृणामभूत् १४३
एवं सर्वसुख प्राप्तौ किमर्था जातिकल्पना। तया चानर्थबाहुल्य-प्राप्तिर्वा कस्य रोचते।१४४

उच्चनीचादि भावस्य हेतुः स्वीयप्रवर्तनम् । श्रेष्ठत्वाश्रेष्ठतासिद्धिः विद्याऽविद्यानिबन्धना॥१४५
पूजत्वापूज्यताहेतुः सदाचारादिरेव हि । न त्वन्यदन्धविश्वासबीजं हेतुतयैषितम् ॥१४६॥
स्नातकानां विवाहं च प्रायो गुरुकुलाधिपाः । कुर्वन्ति स्म स्वभावेन तुल्ययोर्वरकन्ययोः॥१४
न तत्राप्यन्धविश्वासमूला जातिः प्रगण्यते । नापि गोत्रं किन्तु पित्रोः सप्तपुरुषवर्जनम् १४८
एतदेवं हि पर्याप्तं व्यावृत्यर्थं पशुत्वतः । मन्यते स्म जनैः पश्चात्सृष्टयादावप्यलक्षितम् १४९
विद्यासन्ततिरेवादौ गोत्रमासीत्ततः क्रमात् । जातिवादिभिरुत्पत्तिहेतुकत्वेन सम्मतम् ॥१५०
ब्रह्मणा मनुना चेयं सृष्टिः स्वीयाहरागमे । प्रवर्तते यथापूर्वं प्राक्प्रदर्शितरीतितः ॥१५१॥
गोत्रर्षिसमुदायस्य विप्रेष्वन्योन्यभेदकः । वंशो विद्यासम्प्रयुक्तो न तूत्पत्तिनिबन्धनः ॥१५२

जातिवादियों को यातनाओं के कारण पहले जो-जो पाखण्ड मतों में प्रविष्ट थे वे भी वैदिक मत में आगये थे और पाखण्ड जाति प्रथा का नाश हो जाने से वे निश्चिन्त भी रहते थे। सस्यानुकूल वृष्टि और सर्वमानवों में शान्ति हो जाने का कारण उस शेष कलियुग में कृतयुग की तरह मनुष्यों में किसी प्रकार की व्याधि शारीरिक या मानसिक नहीं रहती थी। उस समय उच्चनीचादिभाव का हेतु आदमी का प्रवर्तन ही माना जाता था और श्रेष्ठत्वा-श्रेष्ठत्व का हेतु विद्या और अविद्या हो मानी जाती थी और पूज्यत्वापूज्यत्व का भी सदाचारादि ही हेतु माना जाता था न कि पूर्व वंश परम्परा, जिसे अन्ध विश्वासी लोग पहले मानते थे। विश्वविद्यालयों में स्नातकों का विवाह भी, गुरुकुलाध्यक्ष की सम्मति से, तुल्य स्वभाव वाले वधूवरों को किया जाता था। उसमें अन्धविश्वास मूल, जाति और गोत्र भी देखा नहीं जाता था। किन्तु मातृ सम्बन्धियों में पाँच पुरुषों और पितृ सम्बन्धियों में सात पुरुषों को छोड़कर विवाह किया जाता था और उतने से ही पशुतुल्यता का वारण समझा जाता था, जो सृष्ट्यादि में उतना भो नियम नहीं रहता था। गोत्र पहले विद्यासन्तति ही रहा किन्तु बाद में वह उत्पत्ति मूलक माना गया था। ब्रह्म और मनु के द्वारा ही यह सृष्टि दर्शित रीति से पैदा हुई है न कि गोत्रर्षियों के द्वारा गोत्रर्षिवंशपरम्परा तो पहले विद्या प्रयुक्त ही रही न कि जन्म प्रयुक्त।

सृष्टयादावप्यलक्षितमिति (१४९) पितृतः सप्तपूर्व - पुरुषान् मातृतः पञ्च पुरुषांश्च वर्जयित्वा विवाहकरणं यद्यपि सृष्टयादौ नासीत्तथापि पशुतुल्यत्वव्यावृत्यर्थं पश्चात्स नियमः स्वीकृतः । जातिवादिभि[illegible] (१५०) पूर्वकाले द्वित्र-वेदशास्त्राध्यय-नानन्तरलभ्या अपि द्विवेदित्रिवेदिशास्त्रिप[illegible]र्याद्युपाधयः पश्चाद्यथा जन्मनैवाङ्गी-कृताः प्राचीनकाले स्वाभाविक-शमदमादिगुण[illegible]भ्या अपि ब्राह्मणत्वाद्युपाधयो यथा पश्चाज्जन्मनैवाङ्गीकृता। तथा पूर्वं विद्यासन्ततिसमागतान्यपि गोत्राणि पश्चाज्जन्मनै-वाङ्गीकृतानि । यदा चैतेषां जन्मनिबन्धनत्वमङ्गीकृतं तदारभ्य तेषामुपाधिनां वेदाध्ययन-

हेतुकत्वं नष्टमासीत् । अर्थादधीतद्वित्रवेदो न द्विवेदी नापि त्रिवेदी भवतीदानीं किन्तु प्राचीन-कालद्विवेदत्रिवेदवंशपरम्परागत एव । एवं शमदमादिगुणवान्न ब्राह्मणः किन्तु शमादिगुणवत्पूर्वपुरुष परम्पराग एव । एवं गोत्रविषयेऽपि ज्ञातव्यम् ।

भवन्तोऽपि सदा तुच्छ स्वार्थलोभैकहेतुकम् । वाक्यजातं परित्यज्य गृह्णन्तु मुनिभाषितम् ।
यथा व्रीह्यादि सस्येषु प्रवृद्धानि तृणानि हि । बहिर्निष्कास्य सस्यानि वर्धयन्ति कृषीवलाः।
यथाऽऽपणात्स्ववित्तेन क्रीतेषु तण्डुलादिषु । व्यापारिमिश्रितानल्प ग्राव्णो निष्कास्य भुञ्जते।
तथा वेदादिशास्त्रेषु केषां चित्सेव्यता तथा । सेवकत्वं तथाऽन्येषां जातिबुध्या यदीरितम् ।
तत्सर्वं च परित्याज्यमैहिकामुष्मिकार्थिभिः । अन्यथाऽनर्थप्राप्तिः स्या त्स्वस्वकीय परात्मनाम्
तृणानामबहिष्कारे सस्यानां क्षीणता यथा । तद्ग्राव्णां चाबहिष्कारे मृत्युस्तण्डुलभोजिनाम्
तथा कल्पितवाक्यानामनिष्कासपुरस्सरम् । ग्रहणेमूलवाक्यानामप्यनर्थार्थशक्यता ॥१५९॥
इदं तृणमयं ग्रावेत्यत्र प्रत्यक्षतः प्रमा । तथेदं कल्पितं तन्नेत्यत्र लोभादिलिङ्गितः ।१६०॥
जन्मजातिव्यवस्था हि न मनोर्न ममापि वा । न मद्भ्रातृगणस्येष्टा जनवैषम्यकारिणी ॥
यदा वर्णस्वरूपादीन् पृष्टाः सिद्धमहर्षयः । वेदानुरूपमेवोचुः जनावैषम्यकारकम् ॥१६२॥

आप लोग भी स्वार्थ लोभी के द्वारा बनाये गये वाक्यों को छोड़कर आदिमहर्षियों के उपदेशों को सदा ग्रहण करें। जैसे फसलों में पैदा हुए घास को बाहर निकाल कर कर्षक लोग फसलों को बढ़ाते हैं और चावल आदि में व्यापारि मिश्रित कंकड़ों को निकाल कर लोग खाते हैं, वैसा ही वेद शास्त्रों में स्वार्थी पण्डितों के द्वारा मिलाये गए वाक्यों को, जिन में जन्म सिद्ध सेव्य सेवक भाव बताया जाता हो, आप भी छोड़ दें, नहीं तो अपने और अपने वालों को भी बहुत अनर्थ होगा। फसलों से घास को न हटाने पर जैसे फसल नष्ट हो जाते हैं और चावल से कंकड़ों को न हटाने पर खाने वालों का जैसा मृत्यु हो जाता है, वैसा ही उन कल्पित वाक्यों को न हटाने पर, असल वाक्यों का अनिष्ट अर्थ ही प्रतीत होगा। जैसा घास और कंकड़ प्रत्यक्ष प्रमाण से विदित हो जाते हैं वैसा ही लोभ मूलक कल्पित वाक्य भी उनके वाक्यार्थों से ही मालूम हो जायेंगे। जन्म सिद्ध जाति व्यवस्था न मनु को इष्ट थी न हमारे लिये और मरीच्यादि हमारे भाइयों को इष्ट होती है। सिद्ध महर्षियों ने चार वर्णों का स्वरूप, वेद शास्त्रों के अनुरूप ही बताये थे जिससे जनता में किसी प्रकार का वैषम्य उठने का अवकाश न हो।

शूद्रत्वं सर्वमर्त्यानां जन्मतो मनुरब्रवीत् । तद्धि संस्कारराहित्यमतः स्वतो भवेदिति ॥१६३
दुर्ज्ञेया खलु सा जन्म-सिद्धा जातिव्यवस्थितिः । अतः कोहि प्रवर्तेत स्वोयकर्मणि मानवः॥
न हि ब्राह्मणपुत्रेषु क्षात्रपुत्रविलक्षणम् । रूपं किञ्चिद्विधात्राऽपि निर्मितं गोगजादिवत् १६५

भिन्नरूपं प्रतिव्यक्ति विरिञ्चिः सृजति प्रजाः। पारस्परिकसम्बन्धवतीः शास्त्रप्रवृत्तये ॥
सर्वासां तुल्यरूपत्वे सृज्यमानेत्वियं स्वसा। मद्भार्येयमितिज्ञानं दुर्लभं स्यान्नृणां भुवि ॥
तेनर्तौ पत्न्युपेतव्या सत्कार्या तु स्वसा नृभिः। मात्रादिः पूजनीयेति विधयस्ते निरर्थकाः ॥
एवं विधिनिषेधानुष्ठानसिद्ध्यर्थमन्वहम्। प्रतिपिण्डं पृथग्रूपं सृजतोऽपि प्रजायतेः ॥१६९॥
किमशक्तिश्चतुर्भिन्नरूपसंसर्जने सकृत्। विप्रक्षत्रियविट्शूद्रचतुर्वर्णप्रभेदके ॥१७०॥
अतो याज्ञिकनिर्णीत-जन्मजातिव्यवस्थितिः! ईश्वरेच्छाविरुद्धत्वान्नादर्तव्या मनीषिभिः ॥
शपामि तानहं दुष्टान् ये त्वप्रामाणिकोमिमाम्। अनर्थकल्पनां चक्रुः ये चाङ्गी कुर्वतेऽपि ताम्
ग्रामसूकरतां प्राप्य मलमूत्राणि ते खलाः। भक्षयन्त्विति तत्पापप्रायश्चित्ताय सर्वदा ॥
कर्मैकशरणत्वादि सिद्धये शिवदूषणे। येषां नास्ति भयं तेषां किं स्यादेतत्प्रकल्पने ॥१७४

हमारे पिता मनु ने बताया था कि शूद्रत्व ही सब को जन्मसिद्ध है। क्यों वह संस्कारहीन अवस्था ही है। अतः वह जन्म से ही सिद्ध होता है। जन्म जाति तो किसी को भी जानने के योग्य नहीं है। ऐसी परिस्थिति में कौन अपने अपने वर्णोचित कार्य करने को तैयार हो सकेगा। जैसे पशुपक्ष्यादि में भिन्न भिन्न जाति को सूचित करने के लिए भिन्न भिन्न रूप भी विधाता ने निर्मित किया था वैसा ब्राह्मणादि वर्णों में भिन्न-भिन्न रूप निर्मित किया नही था। शास्त्र विहित कर्मो में प्रवृत्ति और निषिद्ध कर्मों से निवृत्ति करवाने के लिए सृष्टि कर्ता प्रति दिन, प्रति व्यक्ति में अलग अलग रूप बनाते हैं जिससे भाई बहिन और भार्या इत्यादि का ज्ञान हो सके। यदि सब में एक ही प्रकार का रूप बनाया होता तो तब भार्या बहिन इत्यादि ज्ञान किसी को भी हो नहीं सकता था। सब प्राणियों में अनन्त रूप भेद बनवाने में समर्थ परमेश्वर का क्या चार वर्णो में चार रूप भेद बनवाने में सामर्थ्य नहीं रहा? अतः वर्ण जाति प्रथा ईश्वरेच्छा का विरुद्ध होने का कारण वह बिलकुल उपेक्षणीय है। उस प्रथा को शुरू में जो कल्पित किया और जो जो उसको मानते हैं, मैं उन सब को शाप दे देता हूँ जिससे वे अगले जन्म में ग्रामों के सूर बनकर मलमूत्र खाते रहें। सबके लिए कर्मैकशरणत्व दिखाने के अभिप्राय से जो परमेश्वर को भी न मानते हैं ऐसे मीमांसकों के लिए पाखण्ड जाति प्रथादि की कल्पना में क्या भय होगा।

अस्तु कालक्रमेणैते परिणामा भवन्त्यथ। तैस्तु केषांचिदौन्नत्यं बहूनां हानिरेव च ॥१७५॥
तेन देशजनेष्वग्रे विद्वेषास्तु परस्परम्। भवेयुः सर्वसिद्धान्तनाशका भारतद्रुहः ॥१७६॥
केचिदुत्पत्तिसम्प्राप्त ब्राह्मणत्वप्रतीतितः। प्रमत्ता दैविकादानैः त्यजेयुर्वेदमातरम् ॥१७७॥
अन्ये त्वनधिकारित्वव्यपदेशेन वञ्चिताः। विहाय वेदशास्त्राणि पाखण्डमतमाप्नुयुः ॥१७८
वस्तुतः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा स्युः परन्तु ते। जन्मविप्रत्वगर्वेण न कुर्युः विग्रहादिकम्॥

विप्रोचितगुणाभावान्न तेषां विप्रकर्मसु। प्रवृत्तिः स्याद्विनाऽऽयासं मिष्टान्नेन प्रतुष्यताम् ॥
एवं ये वस्तुतो विप्रा जन्मतः क्षत्रियादयः। तेऽपि क्षात्रगुणाभावान्न शक्ताः क्षात्रकर्मसु ॥
विप्रकर्मसु नैतेषामङ्गीकृतव्यवस्थया। शमादिगुणयुक्तानामप्यास्त्विज्यं प्रदास्यते ॥१८२॥
ये केचिद्विरला विप्रपुत्रा विप्रगुणान्विताः। प्रवृत्तिर्बाधकाभावे तेषां स्याद्विप्रकर्मसु॥१८३॥
तदन्ये त्विह तिष्ठेयुरितो भ्रष्टास्ततोऽपि च। दुर्व्यापारेषु संरक्ताः क्वचिद्दुष्क्रान्तिकारिणः।
क्षत्रियादाप्तजन्मानोऽप्येवं स्युर्व्यर्थजीवनाः। एषोऽनर्थो महान् सर्व-देशेषु प्रसरिष्यति।१८५
तुच्छस्वार्थाभिलाषेण कृतान् दोषान् कलौयुगे। समारोप्य चरेयुस्ते भक्ष्यप्राप्त्यै मृगादिवत्
काले कश्चिन्न दोषोऽस्ति किन्तु क्षुद्रजनेषु सः। दोषापाये सतांशश्वत् कालः सर्वः कृतायते
यत्र वर्णाश्रमाचार-भेदाः सन्तीदृशा नृषु। तत्रैव युगभेदोऽपि देशे नान्यत्र कुत्रचित्।१८८

अस्तु कालगति के अनुसार लोक में ऐसे परिणाम होते ही रहते हैं और उनसे जनता में परस्पर द्वेष और क्रान्तियाँ, जिनसे सर्व सिद्धान्तों और सारे देश की क्षति भी निश्चित है, होती रहती हैं। जिनको जन्म से ही ब्राह्मणत्व प्रसिद्धि हो जाता है वे लोग, मुफ्त भोजन और दक्षिणा आदि पाते हुए प्रमत्त होकर वेदशास्त्रों को छोड़ देंगे और दूसरे लोग, अपने को अब्राह्मण और यज्ञादि कर्मो का अनधिकारी समझ कर शास्त्रों को छोड़ देंगे और अवैदिक मतों में प्रविष्ट भी हो जायेंगे। जो गुणतः क्षत्रिय हैं किन्तु जन्म से विप्र होने का कारण युद्धादि कर्म नहीं करेंगे और वस्तुतः ब्राह्मण न होने का कारण ब्राह्मणोचित जप तप आदि कर्मों में प्रवृत्त नहीं होंगे। कुछ भी न करने पर भी उनको मिष्टान्न जातिवादि मूर्खों के द्वारा मिलेगा ही है। इसी प्रकार जो वस्तुतः ब्राह्मण होने पर भी कल्पित जाति व्यवस्था के कारण क्षत्रियादि माने जायेंगे वे ब्राह्मण कार्यों में प्रवृत्त नहो होंगे और क्षत्रियोचित युद्धादि में ऐसे स्वभाव न रहने का कारण प्रवृत्त न होंगे। जो जन्म से और गुणों से ब्राह्मण हो वैसे थोड़े लोग वैदिक कर्मों में प्रवृत्त हो सकेंगे और अतिरिक्त सभी लोग इतो भ्रष्टास्ततो भ्रष्टा होकर दुर्व्यसनों में और दुष्क्रान्तियों में लगे रहेंगे। यही महान अनर्थ सब देशों में फैल जायगा। अपने दोषों को न समझ कर लोग "ये सब कलियुग के दोष हैं" ऐसा कहते हुए हमेशा पेट के वास्ते घूमते रहेंगे। काल में कुछ भी दोष कभी भी नहीं रहता और वह तो कुटिल लोगों में ही है। ये दोष जब जनता में नहीं रहेंगे तब वह कृतयुग ही है। जिस देश में ऐसी जातिप्रथा रहेगी वहीं कलियुग आदि युग भेद रहेगा न कि दूसरे देश में।

तत्रैव युगभेद इति (१८८) तदुक्तं ब्रह्मपुराणे "वसन्ति भारते वर्षे युगांन्यत्र महामुने। कृतं त्रेता द्वापर च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्" (२१/२०) इति। एवं मत्स्येऽपि (१४१।१७) शास्त्रोयवर्णाश्रमवद्भिः यथावच्छास्त्रविहित कर्मानुष्ठाने सति

कृतयुगं तत्रैव किञ्चिच्छैथिल्ये सति त्रेता द्वापरं च,नानाविधजातिमतप्रभेदान् कल्पयित्वा स्वयं न कर्माण्यनुष्ठाय परानपि तदनुष्ठानाद् दूरीकृत्य वर्तने कलियुगमिति भाव ।

पञ्चमोऽध्यायः (आश्रमस्वरूपवर्णनम्)

एतावता हि वर्णानां स्वरूपं प्रतिपादितम् । श्रूयतामाश्रमाणां तदिदानीं प्रतिपाद्यते ॥१॥
यज्ञोपवीतसंस्कारात्परं पूर्वं विवाहतः । स्वीयान् पालयतो धर्मान् ब्रह्मचर्याश्रमो मतः ॥२॥
ब्रह्म वेदं तदङ्गं वा यश्चरत्यधिगच्छति । ब्रह्मणे वा चरत्यत्ति ब्रह्मचारी स कथ्यते ॥३॥
पाणिग्रहण-संस्कारात्पुरुषार्थत्रयार्थिनाम् । धर्मान् पालयतः स्वीयान् गृहस्थाख्याश्रमो मतः
भार्या भर्तुःशरीरार्धं यस्मात्तिष्ठति सा गृहे । तस्माद्भर्ता गृहस्थोऽतःप्रोच्यते शास्त्रवित्तमैः
पुरुषार्थत्रयाप्तीहां विहाय वसतो वने । स्वीयान् पालयतो धर्मान् वानप्रस्थाश्रमो मतः ॥६
प्रकर्षेण सदैवाहर्निशं वने पुराद्बहिः । यतस्तिष्ठेदतो वानप्रस्थोऽसावुच्यते बुधैः ॥७॥
सम्यङ् न्यस्य गृहं भार्यापुत्रादींश्च व्रजत्यसौ । दूरदेशे यतस्तस्मात्संन्यासीति निगद्यते ।८॥
वर्णाद्वर्णान्तरं गच्छेदाश्रमादाश्रमान्तरम् । उपर्युपर्ययं शास्त्रविधि र्नाधोऽध इष्यते ॥९॥

अभी तक चार वर्णों का स्वरूप बताया गया है। अब आश्रमों का स्वरूप सुनिये। उपनयन के बाद और विवाह के पहले स्वकीय अध्ययन नियम पालन करने वालों को ब्रह्मचर्याश्रम माना जाता है। वेद या वेदाङ्गों को पढ़ने वाला ब्रह्मचारी कहा जाता है। विवाह के बाद धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थों की इच्छा से अपने नियमों का पालन करने वाला पुरुष गृहस्थ होता है। पत्नी पति का आधा शरीर समझी जाती है और वह आधा शरीर हमेशा गृह में (घर) रहता है। अतः वह (गृहे तिष्ठतीति) गृहस्थ कहा जाता है। पहले के तीन पुरुषार्थों की आशा न रख कर वन में या अपने गाँव से वाहर नियम पूर्वक तपस्या करने वाला पुरुष वानप्रस्थ आश्रमी होता है। अपने स्त्रीपुत्रादि को घर को और अपने देश को भी छोड़कर दूर देश में रहने वाला सन्यासी होता है। पूर्व २ निकृष्ट वर्ण को (अर्थात पूर्व सिद्ध शूद्रत्वादि को) छोड़कर उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) वर्ण में और पूर्व २ आश्रम को छोड़कर श्रेष्ठ आश्रम में जाना चाहिये। उत्तम वर्ण और उत्तम आश्रम में जाने के बाद नीचे न आवें।

वर्णाद्वर्णान्तरमिति (९) वर्णा जन्मसिद्धजातयो न भवन्ति, किन्तु सज्जनत्वदुर्जनत्वादिवत् ऋत्विक्त्वादिवच्चोपाधय एवेति सर्वैरवश्यमनिच्छद्भिरप्यङ्गीकरणीयम् । यदा चैवं तदा दुर्जनत्वादित्यागपूर्वकसज्जनत्वसम्पादने यथा विधयः संभवन्ति तथा पूर्वपूर्वनिकृष्टवर्णत्यागेनोत्तमोत्तमवर्णसम्पादनेऽपि विधि संभवत्येव । अतः उक्तं वर्णाद्वर्णान्तरमिति । आश्रमपरिवर्तनवत् स्वाभाविकगुणप्रयुक्तवर्णस्य परिवर्तनं कस्यचित्पुरुषस्य यदि कृति साध्यं न भवति तदा स एकस्मिन् वर्णे एव स्थातुमर्हति । स्वभावो दुरतिक्रम इति न्यायेन स्वाभाविकगुणत्यागस्या साध्यत्वेन तत्प्रयुक्तवर्णलाभस्याप्यसाध्यत्वात् ।

स्त्रीणां सन्त्याश्रमाः सर्वे ब्रह्मचर्यगृहादयः पुरुषार्थनिमित्तत्वादिति वेदविदां मतम् ।।१०।।
वस्त्रधारणमेवोपवीतं भवति योषिताम् । पुंसामपि तदेवोपवीतं मुख्यमिति श्रुतिः ।।११।।
नास्ति स्त्रीणां पृथग्वर्णो ब्राह्मणत्वादिकस्त्विह । पत्युर्वर्णेन युज्यन्ते तद्गोत्रेणेव योषितः ।
न हि स्त्रीणां पृथग्यज्ञो वर्णनिर्देशपूर्वकः । विहितोऽस्ति श्रुतौ येन वर्णाः स्युरपि योषिताम् ।
तासां यद्यपि वृत्त्यर्थकर्माण्यात्मगुणैः सह । सन्ति वर्णनिमित्तानि पुरुषाणामिव स्वतः ।१४
तथापि योषितां श्रौतवर्ण-कृत्याद्यभावतः । तदर्था शास्त्रज्ञो वर्णप्रसिद्धि र्नैव विद्यते ।१५।
भारताद्भिन्नदेशेषु भिन्नधर्मावलम्बिनाम् । यथाऽऽत्मगुणवृत्त्यर्थकर्मसत्त्वे प्यवर्णिता ।।१६।।
यतस्तन्मतग्रन्थेषु वर्णनिर्देशपूर्वकम् । कर्माण्यविहिताग्न्येवं भारते योषितामपि ।।१७।।

स्त्रियों को भी चार आश्रम हैं। क्यों ? आश्रम तो पुरुषार्थ साधन होते हैं और स्त्रियों को भी पुरुषार्थाभिलाषा रहती है। स्त्रियों के लिये अपना वस्त्र धारण ही यज्ञोपवीत समझा जाता है। पुरुषों को भी वही वस्त्र धारण (दक्षिण भुज के नीचे बाम भुज के ऊपर तक जन्ने की तरह पहनना) मुख्य यज्ञोपवीत होता है। स्त्रियों में ब्राह्मणत्वादि चार वर्ण नहीं रहते हैं। पति का वर्ण ही गोत्र को तरह, पत्नी का वर्ण माना जाता है। क्यों ? जैसे ब्राह्मणादि वर्णों के उद्देश्य से वेदों में यागादि विहित हैं वैसा ब्राह्मणी आदि के उद्देश्य से शास्त्रों में कुछ भी कर्म विहित नहीं है। अतः शास्त्रीय वर्ण उनमें नहीं हैं। यद्यपि स्त्रियों में भी वर्ण निमित्त शमादि गुण और तदनुरूप कर्मानुष्ठान भी देखे जाते हैं, तो भी श्रौत कर्म उनके लिए अलग विहित नहीं हैं। अतः तदर्थ श्रौतवर्ण भी स्त्रियों में माने नहीं जाते हैं। वर्ण प्रयोजक शमदमादि गुण वाले और तदनुरूप अध्यापन युद्धादि कर्म करने वाले यवनादि पुरुष, भिन्न राष्ट्रों में भी हैं तो भी उनमें ब्राह्मणादि वर्ण भेद नहीं, क्यों ? उनके मतग्रन्थों में ऐसे वर्ण निर्देश पूर्वक कर्म नहीं हैं। भारतीय ग्रन्थों में ऐसा निर्देश है। अतः भारतीय पुरुषों में वर्णभेद है न कि स्त्रियों में। वह भी भेद तत्कर्मानुष्ठान प्रसङ्ग में ही है न कि हमेशा।

स्त्रीणां सन्त्याश्रमाः (१०) इति। पुरुषार्थाः चत्वारः। तत्राद्यत्रये गृहस्थाश्रम उपयुज्यते। मोक्षपुरुषार्थे च चत्वारोऽप्युपयुज्यन्ते। श्रेयप्राप्तिनिमित्तत्वेन सर्वेष्वाश्रमेषु स्त्रीणां पुंसां चाधिकारः। वस्त्रधारणमिति (११) तैत्तिरीयारण्यके उक्तम् "तस्माद्यज्ञोपवीत्येवाधीयीत याजयेद्यजेत वा यज्ञस्य प्रसृत्यै" (२।१) इति। प्रसृतिः प्रकृष्टगुणयुक्तत्वम्। कीदृशं तदुपवीतमिति जिज्ञासायां तत्रैव तदुपवीतसाधनं द्रव्यं विधीयते। "अजिनं वासो वा दक्षिणत उपवीय" इति। "कृष्णाजिनवस्त्रयोरन्यतरद् द्रव्यं दक्षिणभागे लम्बमानं कृत्वाऽधीयीतेत्यर्थ" इति तदीयं सायणभाष्यम्। तादृशं चोपवीतं

स्त्रीणां वस्त्रधारणे एव सिध्यति। पुंसामपि तदृशं वस्त्रधारणमेव मुख्यमुपवीतमिति शिष्टैरिष्यतेऽपि। अतस्तादृशोपवीतेन स्त्रियोऽप्यध्येतुमर्हन्तीति स्मृत्यभिप्रायः। नास्ति स्त्रीणां पृथग्वर्ण इति (१२) मैत्रायणीयसंहितायामुक्तम् "चत्वारो वै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रस्तेषामेवैनमुद्भेदयति" (४।४।६) इति। एवं "त्रींस्तृचाऽननुब्रूयाद्राजन्यस्य, त्रयो वाऽन्ये राजन्यात्पुरुषा ब्राह्मणो वैश्यः शूद्रः, तानेवास्मा अनुकान् करोति" (तै० सं० २।५।१०) इति। एतेनेदं ज्ञायते यद्वर्णाः पुरुषेष्वेव न तु स्त्रीष्विति। पुंयोगादेव गोत्रवत्स्त्रीषु वर्णा उपचर्यन्ते तदेवात्रापि स्मृतावुक्तम्। लोकाचारेऽपि ब्राह्मणभोजनादिप्रसक्तौ पुरुषा एव निमन्त्र्यन्ते न तु स्त्रियः। ते च वर्णा यज्ञानुष्ठान समये व्यवहर्तव्या न ततो बहिः। मनोविनोदार्थनाटकादिप्रदर्शन समये पुरुषाः स्वकीययोग्यतानुसारेण दुष्यन्तशकुन्तलादि-पात्राणि धारयन्तो यथा तत्रैव तत्तन्नामभिर्व्यवह्रियन्ते न तु बहिः तथा स्वर्गादिसुखार्थयागप्रयोगेऽपि तदनुष्ठातृवर्णस्य तन्नाम्ना व्यवहारो न तु बहिः। यथा लोके ग्रामादौ रिविन्यू इन्सफिक्टर आवश्यकश्चेत्तत्परीक्षायामुत्तीर्णः तत्स्थाने नियुज्यते, तन्नियोगानन्तरमेव च तस्य तन्नामापि, न तु ततः पूर्वं तथा ब्राह्मणादिकर्तृकयागानुष्ठानप्रसक्तौ को वा ब्राह्मणादित्वेन ग्राह्य इति जिज्ञासायां यो वेदमधीत्य सहज-शमदमादिगुणपूर्वकं तमध्यापयति सएव ब्राह्मणत्वेन ग्राह्यः। यागे एव तस्य ब्राह्मणशब्दव्यपदेशभाक्त्वं न त्वन्यत्रेति। एतादृशी एव वैदिको वर्णस्थितिः।

चतुराश्रमिणां वासस्थानं भिन्नं विधीयते। अन्यथाऽऽश्रमकृत्यानि भवेयुर्विगुणानि हि १८॥
सर्वेषामेकमावासस्थानं स्याद्ब्रह्मचारिणाम्। वानप्रस्थयतीनां च स्थानमेकमपीष्यते ।१९।
गृहस्थानां पृथग्वासः प्रतिद्वन्द्वं भवेद्धितम्। भोजनादौ तु सर्वेषां सहभावोऽपि युज्यते ।२०।

चार आश्रम वालों का निवास स्थान अलग-अलग रहना चाहिये नहीं तो उनके कार्य ठीक नहीं चलंगे। सभी ब्रह्मचारी एक स्थान पर, एवं सभी वानप्रस्थ और संन्यासी सब एकैक स्थान पर मिल कर रह सकते हैं। प्रति गृहस्थ को एकैक स्थान चाहिये। भोजनादि में सब आश्रमियों को एक स्थान भी हो सकता है।

अथ षष्ठोऽध्यायः (ब्रह्मचर्याश्रमधर्माः)

वर्णाश्रमस्वरूपं यत्पृष्टोऽहं तदुपादिशम्। तद्धर्मानपि शृण्वन्तु मुनयः क्रमशोऽधुना ॥१॥
वटुधर्मान् प्रवक्ष्यामि पुराऽस्मद्गुरुणोदितान्। आचारानपि विद्योपयोगिनो गुरुवेश्मनि ।२।
पंचवर्षोत्तरं बालबालिका गुरुवेश्मनि। गच्छेयुः बालकाः पुम्भिः स्त्रीभिश्चाधिष्ठितेऽपराः
कृतोपनयनास्तत्र कुर्युर्गुर्वनुशासितम्। यज्ञोपवीतमेकैकं धारयेयुर्निरन्तरम् ॥४॥
तद्धि कार्पासनिर्भिन्ननवतन्तुविनिर्मितम्। त्रिसूत्रमेकग्रन्थि स्याद्वासो विन्यासमेव वा ।५।
उपवीतात्परं पुंसां दिव्यो देहः प्रजायते। पितरावस्य चाचार्यसावित्र्यौ संभविष्यतः ॥६॥
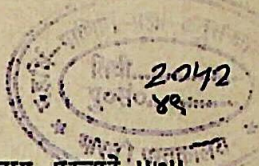
ततः पूर्वतनो देहो यो मातापितृदेहजः। केवलं स मनुष्यत्व-द्योतनाय प्रकल्पते ॥७॥
देहोऽयमन्नपानादि - सारतः परिरक्ष्यते। आचार्यस्योपदेशेन द्वितीयः परिरक्ष्यते ॥८॥
शरीरं कामजं तत्तज्जातिव्यञ्जकतामियात्। मन्त्रजंतु द्विजत्वादेव्यञ्जकं भवति द्विजाः ॥
निद्रातः प्रातरुत्थाय गत्वा दूरं निजाश्रमात्। मलमूत्रे समुत्सृज्य गुदहस्तौ पदद्वयम् ।१०।
प्रक्षाल्य वारिणा पूर्वं त्रिवारं क्षालयेन्मृदा। गण्डूषपञ्चकं कृत्वा विदध्याद्दन्तधावनम् ११
स्नात्वा नद्यां तु कूपे वा ललाटे भस्म धारयेत्। शुक्लवस्त्रद्वयं धृत्वा त्रिराचामेदपः शिखी

वर्ण और आश्रम का स्वरूप बताया गया। उनके धर्मों को अब सुनिये। पाँच वर्ष उम्र के बाद लड़के और लड़कियाँ गुरुकुलों में जाना चाहिये। वे गुरुकुल, पुरुषों के अलग स्त्रियों के अलग होना चाहिये। गुरुकुलों में बालक और बालिकायें गुरुजनों की आज्ञा को ठीक पालन करना चाहिये। उपनयन संस्कार के बाद मनुष्यों को दिव्य देह उत्पन्न हो जाता है। उस दिव्य देह के पिता और माता यथाक्रम आचार्य और सावित्री होती है। इससे पहले का शरीर जो माता पितृशरीरों से उत्पन्न है वह केवल मनुष्यत्व जाति का व्यञ्जक होता है। यह तो अन्नपानादि से रक्षित और दूसरा दिव्य देह आचार्य के उपदिष्ट मन्त्र की आवृत्ति से रक्षित होता है।

"उपवीतात्परमिति (६) तदुक्तम्" द्वय्यी वा इमाः प्रजाः दैव्यश्च मानुष्यश्च, ता वा इमा मानुष्यः प्रजाः प्रजननात्प्रजायन्ते। छन्दांसिवै दैव्यः प्रजाः। तानि मुखतो जनयते, तत एता जनयते (शत० ब्रा० ११।३।६।१७) इति। पाद्मे चोक्तम् 'हरेः पूजोपचारेण ध्यानेन नियमेन च। सत्यभावेन दानेन नूत्नः कायो विजायते (अ० ७२ २६) इति। एतत्प्रमाणेन जातिवादिमतेऽपि सर्वे संस्करणीया भवन्ति। कार्पासनिर्मितमुपवीतं स्मार्तम्। वैदिकं त्वजिनं वासो वा। अजिनापेक्षया वास एव श्रेयः।

सन्ध्यामपि सदा कुर्यादुदयेऽस्तमयेऽपि च। प्रातः सन्ध्यां समुत्थाय सायं तूपविशन् मुदा।
ॐभूर्भुवः सुवश्चैतद्व्याहृतित्रयपूर्वकम्। गायत्रीमन्त्रमुत्कृष्टं दशवारं जपेद्वटुः ॥१४॥
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि। सर्वैः सम्भूय वैकत्र प्रत्येकं वा यथाविधि ।१५।
पक्षान्तावुपपक्षान्तपुण्यपर्वाष्टमीद्वयम्। विहाय गुरुणाऽऽहूतो ह्यधीयीत वटुःश्रुतिम् ॥१६॥
स्वाध्यायाद्यन्तयोः नत्वा गुरुपादद्वयं स्पृशेत्। सव्यं सव्येन हस्तेन दक्षिणेन तु दक्षिणम्
अधीतमचिरादेव पाठं पश्येदतन्द्रितः। पूर्वं त्वध्येष्यमाणं च तद्धि तन्मुख्यकार्यकम् ॥१८॥
भित्तिकादिकमाश्रित्य पादं संचालयन्नपि। पा[illegible] प्रसार्य वा नाय मुपविशेद्गुरुसन्निधौ ।१९
भ्रातृभावेनचान्येषु सहाध्यायिषु संचरेत्। [illegible]श्च दैवभावेन पश्येदामरणान्तिकम्। २०
वयोविद्याश्रमैःस्वस्माच्छ्रेष्ठान् वन्देत भक्तितः स्वाश्रमस्थानपि श्रेष्ठान् विनयी प्रणमेत्सदा

दोनों वक्त सन्ध्या करें और सबेरे उठकर और साम को बैठकर गायत्री

का जप करें। ॐ भूर्भुवः सुवः ऐसा तीन बार व्याहृति पहले पहले बोलते हुए गायत्री मन्त्र का जप करें। पठित पाठों को तुरन्त देखे और कल पढ़ने वाला पाठों को भी पहले देखते रहे, क्यों? वही उसका मुख्य कार्य है। वयोवृद्धों और विद्यावृद्धों को भक्तिभाव से प्रणाम करे।

गुरुकुलाध्यक्षो भिक्षाव्यवस्थामस्य कल्पयेत्। प्रतिग्रहागतार्थेन सायंप्रातश्च तृप्तिदाम्। २२
ग्रामश्चेन्नातिदूरे स्याद्गत्वा भिक्षामटेद्वटुः। यावदावश्यकं सर्ववर्णेषु पतितान् विना। २३
यतवागन्नमश्नीयादाचम्यातिस्पृहां विना। समयासत्तिपर्यन्तं भिक्षादृष्टिमपि त्यजेत्। २४
वेदवेदाङ्गविद्यानामर्थ-ज्ञानपुरस्सरम्। यावत्पारंगतिस्तावत्तत्रैवासौ स्थिरं वसेत्। २५
गृहाश्रमप्रवेशेच्छा नचेदाजीवनं वसेत्। नैष्ठिकब्रह्मचर्येण तत्रैवाचार्यसन्निधौ। २६
विरक्तानामाश्रमेषु मन्दिरादिषु वा वसेत्। गृहस्थानां गृहे वासो नैकं दिनमपीष्यते। २७
आचार्यादाप्तविद्यस्य गृहस्थाश्रमकामना। यदि स्यात्स निवर्तेत पितृवेश्म गुरोःकुलात्। २८
अथवाऽध्यक्षसम्मत्या कन्यां गुरुकुलोद्गताम्। स्वानुरूपां वयो विद्यास्वभावैरुद्वहेत्प्रियाम् २९
पितृतः पुरुषान् सप्त पञ्च पूर्वांश्च मातृतः। त्यक्त्वा तदुत्तरां कन्यामुद्वहेत यथारुचि। ३०

भक्तजनों के द्वारा दानादि के रूप में आये हुए पैसा से गुरुकुलों के अध्यक्ष, विद्यार्थियों की भिक्षा की व्यवस्था करें। वेदों और वेदाङ्गों के अर्थज्ञान सहित अध्ययन पूर्ण होने तक विद्यार्थी गुरुकुलों में ही रहे। गृहस्थाश्रम में जाने की इच्छा न हो तो मरण पर्यन्त गुरुसन्निधि में या संन्यासियों के मठों में निवास करें न कि गृहस्थों के घरों में। गृहस्थ बनने की इच्छा होगी तो गुरुजनों से आज्ञा लेकर पिता के घर में चले जावें। अथवा गुरुकुलाध्यक्ष की सम्मति से स्त्री-गुरुकुलों में पठित कन्या से शादी करें।

अथ सप्तमोऽध्यायः (गृहस्थाश्रमधर्माः)

विद्यास्थानात् समावृत्तः प्रविविक्षुर्गृहाश्रमम्। कन्यां समुद्वहेदात्मसम्मतां च यवीयसीम्।
सर्वेषामेव वर्णानां भार्यैका संविधीयते। क्षत्रियस्य तु द्वित्रा वा राजानो बहुवल्लभाः।२।
अग्न्याधानं ततः कृष्णकेशो यो जातपुत्रकः। वसन्ताद्यृतुसम्प्राप्तौ प्रकुर्वीत गृहाश्रमी ॥३॥
वसन्ततौ तु विप्रत्वकामो ग्रीष्मे च शारदे। क्षत्रार्यत्वार्थिनौ प्रावृट्तौ शूद्रस्वभावकः ॥४॥
पंचयज्ञान् प्रकुर्वीत पंचपातकनाशकान्। देवर्षिपितृपुंभूतयज्ञान् तत्तृप्तिकारकान् ॥५॥
प्रातर्होमादिकं दैव आर्षस्त्वध्ययनात्मकः। श्राद्धादिः पैतृको यज्ञो मानुष्योऽतिथिसत्क्रिया।
पशुपक्ष्यादिजीवेभ्यः स्वार्जितान्नप्रदापनम्। भूतयज्ञो गृहस्थानां पंचपातकनाशकाः ॥७॥
गृहस्थः सर्वजीवानां स्वेतराश्रमिणां तथा। रक्षकःपोषकश्चातस्तेभ्यो दत्त्वैव भक्षयेत् ॥८॥
प्रातर्होमेन मार्तण्डं सायंहोमेन चानलम्। तोषयेत्तेन सस्यानुकूला वृष्टिर्भवेदिह ॥९॥

ऋषीन् प्रतोषयेन्नित्यं स्वाध्यायेन पितॄन् गृही । पितृश्राद्धादिना मर्त्यानन्नेनातिथिरूपिणः
अविज्ञाप्य तिथिं यस्मादायातीत्यतिथिर्मतः । अन्नपानादिभिःप्रीत्या सत्कुर्यात्तं सदा गृही
गृहस्थान्याश्रमस्थानां श्राद्धादौ भोजनार्हता । दक्षिणादानपात्रत्वमपि तेषां प्रशस्यते ॥१२
श्राद्धादौ गृहिणःसम्यग्भुक्त्वा रात्रौ स्वभार्यया । गच्छेद्यदि तच्छ्राद्धं पितृदुःखावहं भवेत्
भार्यापुत्रसमुत्कर्षव्यग्रचित्ता भवन्त्यतः । मायामयं गृहस्थानां मनस्तस्मान्न पात्रता ॥१४॥
कुटुम्बकलहेनाशापूर्तिप्रतिहतत्वतः । हर्षशोकात्मकं तेषां सर्वदाऽप्यस्थिरं मनः ॥१५॥
व्यापृता वहुगार्हस्थ्यकार्येष्वेते निरन्तरम् । तस्मादशान्तचित्तास्ते न प्रतिग्रहभागिनः ॥

ब्राह्मणत्व कामी वसन्त में क्षत्रियत्व कामी ग्रीष्म में, वैश्यत्व कामी वर्षा ऋतु में और शूद्रस्वभाव वाले शरदृतु में आधान करें। श्राद्ध और विवाहादि शुभकार्यों में गृहस्थेतर आश्रम वालों को भोजन करावें। दक्षिणा देने के लिये भी वे ही पात्र होते हैं न कि गृहस्थ। श्राद्ध भोजन करके गृहस्थ उस रात को भार्या से मिलेगा तो वे पितृ देवता गण घोर दुःख में पड़ जायेंगे। बाल बच्चों की उन्नति करवाने में गृहस्थ का चित्त वहुत अशान्त और मायामय रहता है। अतः वे दान आदि लेने के अधिकारी नहीं हैं।

वसन्तर्ताविति (४) तदुक्तं शतपथे "स यः कामयेत ब्रह्मवर्चसी स्यामिति स वसन्त आदधीत" अथ यः कामयेत क्षत्रं श्रिया यशसा स्यामिति ग्रीष्मे स आदधीत" (१-३) इत्यादिना। तत्र ब्रह्मवर्चसकामो ब्राह्मणत्वकाम एव, एवं कामश्रुतिभिराधान-सिद्धौ 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीतेत्यादीनामनुवादकत्वमात्रम्। या तु कात्यायन श्रौत-सूत्रतद्व्याख्यानादौ निष्कामब्रह्म वर्चसकामब्राह्मणादिपरत्वेन व्यवस्था दर्शिता सा निष्कामत्वस्याप्रसिध्द्याऽनुपपन्ना। तत्सिद्धौ वा निष्कामस्याधान-कर्तव्यत्वाभावात्। अधिकं जात्युपाधिविवेकादधिगन्तव्यम्। श्राद्धादविति (१३) ददुक्तमत्रिस्मृतौ 'श्रद्धंदत्वा च भुक्त्वा च मैथुनंयोऽधिगच्छिति। भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासे रेतसो भुजः' (५-१७) इति।

मायामेव न जानन्ति सततं ब्रह्मचारिणः। संन्यासिनो वनस्थाश्च त्यक्तमाया भवन्ति हि
तपः स्वाध्याययोगात्मध्याननिष्ठापरायणाः। पवित्रा स्युस्सदा ते हि ग्राम्यधर्माद्यभावतः
जीविकावृत्तिहीना हि ब्रह्मचार्यादयस्त्रयः। तस्मात्तेभ्यः प्रदातव्यं यद्यद्देयं गृहाश्रमैः ॥
पाणिग्रहादिसंस्कारसर्वकार्येषु सर्वदा। गृहस्थैःभोजनीयास्ते ब्रह्मचार्यादयस्त्रयः ॥२०॥
गर्भाधानमृतौ पत्न्याः संयोगः प्रथमो भवेत्। स च गर्भस्य संस्कारः श्रौतमन्त्रैर्विधीयते
गर्भधारणतो मासि तृतीये पुत्रकामिना। कार्यं पुंसवनं मन्त्रैरा ते गर्भ इति श्रुतेः ।२३॥
चतुर्थे मासि गर्भस्य षष्ठे स्यादष्टमेऽपि वा। सीमन्तोन्नयनं पत्न्याः सघवात्वादिसाधकम्।

पुत्रे जाते पिता कुर्याज्जातकर्म विधानतः। ऐहिकामुष्मिकं सर्वं सुखं सूनोः भवेद्यतः २५॥
एकादशेऽन्हि पुत्रस्य जाताशौचनिवारणात्। कुर्यान्नाम पिता जन्मनक्षत्राद्यनुसारतः २६।
चतुर्थे मासि पुत्रस्य कुर्यान्निष्क्रमणं पिता। तच्चार्कदर्शनं मन्त्रैः नयनं वाऽन्यवेश्मनि॥
मास्यष्टमे वा पुत्रस्य दशमे द्वादशेऽपि वा। पिता क्षीरान्नमध्वादि प्राशयेद्विधिवच्छिशुम्॥
तृतीयेऽब्दे स्वपुत्रस्य दिने मासे च शोभने। चूडाकर्म प्रकुर्वीत केशक्षौरात्मकं हि तत्॥
एवं द्वित्रान् समुत्पाद्य पुत्रान् पंचासदब्दकः। वानप्रस्थस्ततः पंचसप्तत्यब्दो भवेद्यतिः॥

ब्रह्मचारी माया को जानता ही नहीं और वानप्रस्थ और सन्यासी त्यक्तमाय होते हैं। ये सब तपः स्वाध्यायादि में हमेशा लगे रहते हैं। अतः विवाह, गर्भाधानादि संस्कार और श्राद्धादि में गृहस्थ लोग उन्हीं को ही भोजन दें। गर्भाधानादि संस्कारों को भी तत्तत्समयों में तत्तद्विधि से करें।

गृहस्थानां हि सर्वेषां वर्णभेदेन वृत्तयः। पृथक् पृथक् प्रवक्ष्यन्ते श्रूयन्तां सावधानतः।३१
याजनं यजनं वेदशास्त्रादेः पाठनं तथा। दानं दक्षिणादानमुक्तब्राह्मणवृत्तयः॥३२॥
वेदवेदांङ्गजातस्य स्मृतेरध्यापनं सदा। गैर्वाण्या ब्राह्मणस्योक्तं नापभ्रंशगिरा क्वचित्॥
अपभ्रंशगिरा पाठाद्भ्रश्यते सुकृतान्नरः। सुकृती संस्कृतोक्त्या हि तस्मात्संस्कृतमभ्यसेत्॥
याजनाध्यापनाभ्यां यद्दक्षिणा दीयते जनैः। तावन्मात्रेण जीवेत्स विप्रो न भृतिजीवनः।
अगतौ ब्राह्मणस्येष्टा वैश्यवृत्तिः नृपाज्ञया। दैनिकी मासिकी वाऽपि भृतिस्तस्य न चोद्यते
वानप्रस्थान् यतीन् दृष्ट्वा प्रणमेद्बहु मानयन्। ब्राह्मणांश्च वयोविद्यावरिष्ठानपि नम्रतः
स्वधर्मान् पालयन्तो हि क्षत्रिया राजकोशतः। स्वात्मोचितं लभेरंस्ते मासिकं वेतनं नृपात्
सर्वत्र रक्षकत्वेन नियुक्ता स्ते महीभृता। पक्षपातं न कस्मिंश्चिज्जने कुर्युः प्रलोभत.॥
राष्ट्रस्य तज्जनानां च रक्षणे निजजीवितम्। त्यजन्तो हि नृपान्नस्य ऋणान्मुक्ता भवन्ति ते
धनागारस्य रक्षार्थं नियुक्ता निष्प्रमादतः। सर्वथा राजकोशस्य कुर्यू रक्षणमात्मवत्॥४३
क्षत्रियो ब्राह्मणान् वानप्रस्थान् संन्यासिनस्तथा। क्षत्रियांश्च वयोविद्यावृद्धान् स्वस्मात्सदानमेत्
कृषिर्गोरक्षणं दानं वाणिज्यं यजनं तथा। आदायव्ययवृत्तादिलेखनं राजवेश्मसु॥४४॥
पूर्वोक्तवैश्यवर्यस्य राजवेतन पूर्विका। साध्वीवृत्तिः समाख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥४५॥
यजनं दानमन्येषां सेवासन्नतिपूर्विका। राष्ट्रस्य स्थूलकार्याणां करणं शूद्रवृत्तयः॥४६॥

गृहस्थाश्रम में रहने वालों को ही वर्ण भेद से भिन्न २ याजन और अध्यापनादि वृत्तियाँ बतायी गयीं हैं। सब लोग संस्कृत भाषा से ही पठन पाठनादि करें न कि देशभाषाओं से। सब लोग अपने से वयोविद्यावृद्धों को और उन्नत आश्रमवालों को प्रणाम करें।

यजनं देवपूजादिर्वेदमन्त्रैरिहोच्यते। दानमन्याश्रमिभ्यो हि कार्यं स्याद्गृहमेधिभिः॥४७
गृहस्थो दानकर्तैव न प्रतिग्रहकृद्भवेत्। स च शुद्धमनस्कानां कार्यं दात्रे च पुण्यदः॥

याजनेऽध्यापने चैव यद्विप्राय प्रदीयते । तदेव शुभदं तस्मै तदन्यद् भ्रंशकारणम् ॥४९॥
परप्रतिग्रहाद्दोषः संभवेदुभयोरपि । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च तस्मात्तां वर्जयेद्गृही ॥५०॥
गृही विप्रब्रुवः कश्चित्प्रतिगृह्यान्यतो धनम् ! पुत्रहानिं वयस्यल्पे प्राप्तवानिति नःश्रुतम् ॥
स स्वदोषमविज्ञाय गत्वा च रामसन्निधौ । मृतपुत्रं प्रदर्श्येत्थमवोचत् वचनं रुदन् ॥५२
रामचन्द्रजगन्नाथ शम्भूका नाम शूद्रजः । तपः करोति त्वद्राज्ये तेन मत्पुत्रको मृतः ॥५३
इति तद्वचनं श्रुत्वा रामः स्वगुरुमब्रोत् । भगवन् ब्रूहि मे विप्रपुत्रस्य मृतिकारणम्॥५४॥
ततो ध्यात्वा चिरं सो पि वशिष्ठो राममुक्तवान् । गृहस्थस्सन्नस्य पिता धनं प्रत्यग्रहीत्ततः
पुत्रो मृतोऽस्य शम्भूकतपस्तत्र न कारणम् । धनमस्मै गृहस्थाय प्रदायापि गृही परः ॥
अज्ञानकृतदोषस्य फलं भुङ्क्ते हि यातनाः । प्रायश्चित्ते कृते पित्रा पुत्रो जीवेद्ऽपि ध्रुवम् ॥
शम्भूको शूद्रपुत्रोऽपि न शूद्रः किन्तु वाडवः । यतो देहसुखं त्यक्त्वा तपःकरोत्यधः शिराः ।
किन्तु तद्धि तपो घोरं राजसं नतु सात्विकम् । सात्विकं तूपदिश्यास्य तपः स्वर्गं नयेति च
प्रायश्चित्ते यथाशास्त्रं कृते पुत्रोऽपि जीवितः । शम्भूको रामचन्द्रोपदेशतो हिंमवद्गिरिम् ।
गत्वैकस्यां गुहायां स बहुवर्षाणि सात्विकम् । तपः कृत्वा च कालेन स्वर्गलोकं गतः सुखी ।
प्रतिग्रहसमायातदोषं वारयितुं स्वतः । निर्दोषा ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिःक्षमाः ।६२।

गृहस्थ दानमात्र करें न प्रतिग्रह (दान न लेवें) । पहले कोई ब्राह्मणब्रुव (अपने को ब्राह्मण कहने वाला) किसी से दान लिया था । अतः उसका पुत्र अल्प उम्र में मर गया था । उसको लेकर श्री रामचन्द्र के पास रोते हुए वह गया और कहा कि शंभूक मामक शूद्र तपस्या कर रहा है । अतः हमारा पुत्र मर गया । रामचन्द्र ने वशिष्ठ जी से मरण का कारण पूछा था और वशिष्ठ ने ध्यान करके बताया कि उसका पिता गृहस्थावस्था में दान लिया ।अतः उसका पुत्र मर गया न कि शंभूक की तपस्या से, जो उसको दान दिया वह भी बहुत यातनायें भोगा था ।

तपस्या करने वाला शंभूक शूद्र नही किन्तु वह उत्तम ब्राह्मण ही हैं । मानव शरीर से स्वर्ग में जाने के लिये तपस्या करना सात्विक नहीं है ऐसा रामचन्द्र जी के कहने पर वह, सात्विक तपस्या करने के लिये हिमालय में चला गया था ।

स्वर्गलोकं गत इति (६१) यत्तु शूद्रपुत्रस्य शम्भूकस्य तपःकरणदोषेण कश्चिद् ब्राह्मणपुत्रो बाल्ये वयसि मृत इति श्रीरामचन्द्रद्वारा तद्वधः कारित इति रामायणादौ श्रूयते तदत्यन्तमसङ्गतम् । यतः तपःकरणं शूद्रस्यानुचितं चेत्तदा तद्दोषेण शम्भूको राजा वा सम्यगपालनदोषेण हानिमृच्छेन्न तूदासीनो ब्राह्मणः । अन्यदीयदोषेण तदन्यस्य यदि

हानिर्भवेत्तदा कृतहानाकृताभ्यागमप्रसङ्गः स्यात् । तत्प्रसङ्गवारणायैव हि देहव्यतिरिक्तात्मास्तित्वं महता प्रयासेन शास्त्रकृद्भिः साधितम् । शूद्रैरपि तपोव्रतादिकरणेऽस्माकं सेवका न मिलिष्यन्ति, एतादृशमिथ्यागाथाभिरनिष्टप्रदर्शने सति ते तथा न करिष्यन्ति, सेवकाश्च बहवो मिलिष्यन्तीति स्वार्थलाभेन कल्पितमिथ्याकथाभिः जनस्य सत्यपौराणिक कथास्वपि विश्वासो नष्टः नास्तिकवादश्च समारब्धः । स चेदानीमास्तिकशिरसि शूलायमानः संवर्धते । पाद्मे चोत्तरखण्डे (अं० २५२) प्रोक्तं यत्कस्यचिद्ब्राह्मणस्य पञ्चवर्षवयस्कः पुत्रो मृतः । तं गृहीत्वा पिता श्रीकृष्ण समीपे जगाम रुरोद च श्रीकृष्णस्तु वैकुण्ठलोकात्तमानीय पित्रे दत्तवानिति । एतच्च युक्तमेव । अत्रापि मृतौ कारणं पितृकृतप्रतिग्रह एवेत्यनुमीयते ।

क्षुद्रकल्पितधर्मोपदेशगाथानुसारतः । भूहिरण्यादिकं दत्वा राजानो धनिनस्तथा ॥६३॥
तत्प्रतिग्रहकर्तारोऽप्येवं गते कलौ युगे । नष्टा भ्रष्टाश्च नामावशिष्टाश्चापि न साम्प्रतम् ।
गृहस्थोऽन्यगृहस्थान्न ग्रहीतुं धनमर्हति । लोभाद्यदि स गृह्णीयात्स्वं दातारंच नाशयेत् ।६५
पिताऽपि स्वार्जितं वित्तं गृहिणे स्वसुताय न । दद्याद्येन स पुत्रश्च वृत्तिं त्यक्त्वाऽऽलसो भवेत्
पुत्रजीवनपर्याप्तं धनं दद्यात्पिता यदि । स पुत्रो भार्यया नित्यं खेलेत्तेन पिताऽप्यघी ।६७।
न्यायार्जितधनस्यैव दानमिष्टफलप्रदम् । अन्यायार्जिततत्सर्वंदानेऽप्येनो न मुंचति ।६८।
यस्य या विहिता वृत्तिः तया सम्पादितं धनम् । तस्य न्यायार्जितं तत्स्यादन्यदन्यायसाधितम्
अन्यायार्जितवित्तेन कृतं यागादिकं वृथा । तद्भोग्यपि नरो गच्छेन्नरकं दुस्सहं ध्रुवम् ।
चौर्येणोत्कोचतः कूटसाक्ष्येणाप्यार्जिताद्धनात् । सर्वनाशो भवेत्पुंसामिहामुत्र च लोकयोः ।
न्यायेनार्जितवित्तस्य चतुर्थांशः प्रदीयताम् । अगृहस्थाश्रमिभ्यो न गृहस्थाय कदाचन ।७२।

क्षुद्रलोगों के द्वारा लिखित धर्म शास्त्रों के अनुसार राजा और धनिलोग गृहस्थों को जो जो दान दिये थे उन दोषों से वे सब गत कलियुग में नष्ट हो गये थे । अतः एक गृहस्थ दूसरे गृहस्थ को दान न दें । यदि प्रमाद वश ऐसा किया हो तो दान लेने वालों को और देने वालों को भी बहुत अनिष्ट होगा ।

पिता भी अपनी गृहस्थावस्था में सम्पादित धन को अपने गृहस्थ पुत्र को न दें किन्तु वानप्रस्थाश्रम में और संन्यासाश्रम में अपने भोजनादि व्यय के लिये और उन आश्रमों में अपनी सेवा करने वाले शिष्यों की सहायता के लिये रक्खें । पिता यदि पुत्र को अधिक धन देगा तो वह पुत्र अपनी जीविकावृत्ति को छोड़ कर हमेशा भार्या से खेलता रहेगा और उस से पिता को दोष भी लगेगा । न्याय से सम्पादित धन के दान से ही पुण्य होता है न कि चोरो या घूसकोरी से ।

अथाष्टमोऽध्यायः (वानप्रस्थधर्माः)

पंचासद्वर्षपर्यन्तमात्मनः स गृहाश्रमे । स्थित्वा वनाश्रमं गच्छेत्पुमानापंचसप्ततेः ।१।
जनानामायुषो भागे द्वितीये गृहवासिता । निर्दिष्टा नान्यभागेषु स्वात्मश्रेयोभिलाषिणाम् ।
योगक्षेमौ स्वपुत्राणां गृहे स्थित्वा सदा पुमान् । द्रष्टुं नार्हति युक्तात्मा पश्यन्नस्थिरतां स्वकाम्
पशुपक्ष्यादयोऽप्यात्मपुत्रान ल्पवयःस्थितान् । पोषयित्वा ततःपश्चात् तद्भाग्येषु त्यजन्ति तान्
एतज्ज्ञात्वाऽपि भद्रात्मा सुतान् त्यक्त्वा व्रजेद्वनम् । अन्यथा शोचनीयाऽस्य मंदबुद्धेर्दशाभवेत्
पक्षिणोऽत्यन्तमूका हि त्यक्त्वा मात्रा च यौवने। स्वप्रयत्नेन जीवन्ति प्राज्ञाःपुत्राःकथं नहि
सम्यगध्यापनं पाणिग्रहणं च सुतस्य सः । कारयित्वा स्ववित्तेन त्यजेत्तं पुत्रिकामिव ।७।
पुत्रिका हि स्वपित्राद्यैःविवाहानन्तरं स्वतः । विसृज्यन्ते स्वभाग्याय तद्वत्पुत्रो विसृज्यताम्
अवशिष्टं धनं द्वेधा विभज्य स्वस्वभार्ययो । आत्मार्थमुपयुंजीत वानप्रस्थाश्रमादिषु ।९।
विरक्तो वा सरक्तो वा पुमान् स्यात्पूर्वसंस्कृतेः । तथापि गृहसंत्यागः क्षेमदोऽस्य भवेद्ध्रुवम्
सदा चेत्पुत्रभार्यादिमध्य स्थस्तान्निरीक्षते । सोऽचिरादेव मन्दात्मा नश्येत्कीटविशेषवत् ।
तस्मात्पुत्रादिमान्वा स्यादपुत्रो वा विचक्षणः । तृतीयमायुषो भागं यापयेत्तपसा वने ।१२।
भार्यां पुत्रेषु वा तादृक् स्त्रीणां निक्षिप्य वाऽऽश्रमे । ग्रामाद्दूरे वनेऽरण्ये वसेत्पर्णोटजे स्वयम्
शीतातपागतान् क्लेशान् षोढ्वाऽसह्यानपि स्थिरः। मौनमास्थाय निश्चिन्तस्तपःकुर्यादहर्निशम्
धारयेन्नखरोमाणि जटाःश्मश्रूणि सुव्रती । जीर्णं चीरवस्त्रं वा कार्पासं वा यथासुखम् ।१५।

पचास साल के बाद वानप्रस्थाश्रम में चले जाना चाहिये। आयु के दूसरे भाग में (२५ से ५० तक) घर में रहना आदमी का उचित है न कि तदतिरिक्त भागों में। हमेशा घर में रहकर भार्यापुत्रों को देखते रहना बहुत अनर्थ का कारण हो जाता है। पशु पक्षियाँ भी अपने बाल बच्चों को तब तक ही पालन पोषण करते रहेंगे, जब तक वे उड़ नहीं सकेंगे। इसको देख करके भी आदमी को समझना चाहिये। अज्ञानी पशुपक्षियों के शिशु भी, माता के आश्रय के बिना जीवित रहते हैं तो बुद्धिमान आदमी के बच्चे क्यों सुख से जीवित नहीं रह सकेंगे। अपने पैसे से ठीक पढ़ाकर और शादी भी करवा कर लड़कों को भी लड़कियों की तरह अपने भाग्य पर छोड़ देना चाहिये। बचा हुआ स्वार्जित धन को वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमों में अपनी रक्षा के लिये ले जाना चाहिये। विरक्त हो या सरक्त हो, पुत्रवान हो या अपुत्रवान हो ५० साल के बाद अपने गाँव से बाहर निजी आश्रम बनवा लेना चाहिये। भार्या को पुत्रों के यहाँ छोड़ सकते या वानप्रस्थ स्त्रियों के आश्रम में उसके हिस्सा के साथ उसे भेज सकते हैं।

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थस्तपः कुर्यान्निरन्तरम् । आर्द्रवासाश्च हेमन्ते वर्षास्वभ्रावकाशकः ।
स्वाश्रमान्तिकनिष्पन्नैर्धान्यैर्नानाविधैः फलैः । पत्रपुष्पादिभिः कन्दमूलैः पक्वै रवित्विषा ।
देहयात्रां प्रकुर्वीत जितसर्वेन्द्रियो मुनिः । ध्याननिष्ठो भवेन्नित्यं प्रणायामपरायणः ।१८।
गृहस्थाश्रमिभिर्दत्तं स्वपूर्वाश्रमसंचितम । धनं चेदधिकं तेन स्वकीयाश्रमसन्निधौ ।१९।
स्वीयशान्त्यविरोधेन त्वात्मनोऽप्यस्ति चेद्रुचिः । विद्यासंस्थानमप्येकं संस्थाप्य ब्रह्मचारिणाम्
वेदवेदाङ्गविद्यानां ग्रामादाहूतपण्डितैः । अभ्यासं कारयेद्धीमान् विद्यासन्ततिवृद्धये ।२१।
इयं सन्ततिरेवास्य धार्मिकी स्वात्मनो हिता । अन्या त्वधार्मिकी प्रोक्ता या हि मैथुननिर्गता
वित्तस्य न्यूनताऽप्यत्र यदि स्याद्राजकोशतः । याचितुं च गृहस्थान्वा तं निस्संकोचमर्हति ।
एतादृक्तपसो वृद्धिं कारयन् धनमन्यत । पापीयसोऽपि गृह्णन् स नैनसा लिप्यते वनी।२४।
पक्षपातं स्वकीयेषु प्रतिष्ठेच्छामपि त्यजन् । धनं विद्याविकासार्थं गृह्णन्नपि न दुष्यति। ५
विद्याव्याप्तिनिमित्तेन संगृहीतं धनं यदि । पुत्रपोत्रस्ववन्धुभ्यो दद्याच्चेद्घोरपातकी ।२६।
धर्मार्थं संचितं वित्तं यदि दुर्विनियुज्यते । संचेता रौरवे तप्त्वा भवेत्सूकरजन्मनि ।२७।
यस्य पूर्वाश्रमे पुत्रा बान्धवाश्च तथाविधाः । स नेदृशानि कार्याणि कर्तुमर्हति लम्पटः ।
ते हि यस्य न सन्त्यात्मकलंकापादकाः सुताः । स महात्मा सदा कर्तुमर्हत्येतानि निर्ममः ।

अपने आश्रम के आवरण के अन्दर पैदा हुए फलफूलों से अपना जीवन बिताना चाहिये। गृहस्थ लोग यदि इनके ज्यादा धन दानादि के रूप में दिये हों तो उससे अपने आश्रम के समीप में अपनी शान्ति के अविरोध, एक विद्यालय को स्थापित करें और ब्रह्मचारियों को वेदवेदाङ्ग पढ़ावें। वे ही ब्रह्मचारी शिष्य उसके लिये धार्मिक सन्तान समझे जाते हैं न कि गृहस्थाश्रम का वह सन्तान काम से पैदा किये जाने कारण अधार्मिक ही है।

विद्याव्याप्ति के लिये गृहस्थों से और राजकोष से सहायता के रूप में धन लेने पर भी वह, निर्लिप्त भाववालों को बन्धक नहीं रहेगा। उस धन का दुर्विनियोग करने पर बहुत पाप लग जायगा। पूर्वाश्रम में जिसके पुत्र या अनुरागी बन्धुजन ज्यादा रहते हों तो वे लोग ऐसा काम न करवावें और लोग भी उसको धन न देवें।

पुरा कश्चिद्यतिर्भूत्वा धनं यतिहिताय सः । संगृह्य लोकतस्तेन काश्यां निर्मीय चाश्रमम्।३०
पुत्राय बह्वपत्याय दत्वा दीनयतीनपि । न चक्रे स पापात्मा तद्दोषाद्रौरवेऽपतत् ।३१।
वानप्रस्थाश्रमस्थो हि स्वोत्तराश्रमिणः सदा । नमस्कुर्यात्स्वाश्रमस्थानपि श्रेष्ठान् तपोव्रतान्
श्रेष्ठत्वं तपसा विद्याविशेषण प्रसिद्ध्यति । ज्येष्ठत्वं तु भवेत् भ्रातृजनेष्वेव हि जन्मना ।३३
श्रेष्ठत्वमात्मयत्नेन मूढाः प्राप्तुमशक्तयः । प्रवदन्ति वयं श्रेष्ठा नमस्कार्यश्च जातितः ।३४

दृष्टेरात्मगुणैः स्वस्य श्रेष्ठत्वं वक्तुमक्षमाः। दुर्ज्ञेयजन्मसम्बन्धादात्मनस्तद्वदन्ति ते ।३५।
केचिदात्मगुणास्त्वन्यजनसाधारणा इति। अनन्यतुल्यमात्मीयश्रेष्ठत्वं गान्ति जन्मतः ३६
सामान्यतो जनिः सर्वप्राणिसाधारणैव हि। अज्ञानबाधिताऽनादिपितृवीर्यक्रमागता ।३७।
कस्यां मातरि कस्माद्वा पितुर्जातोऽहमित्यपि। स्वयं केनापि मानेन विज्ञातुं नैव शक्यते।
एवं वस्तुस्थितौसत्यां यो वदेदात्मनस्तु ताम्। स मूढो वंचको वा स्यादन्येषामिति निश्चितम्
आढ्योऽभिजनवानुच्चवंशजोऽहमिति ब्रुवन्। सम्पत्तिमासुरीं मूढःख्यापयत्यात्मनः स्वयम्।
तस्माद्विद्यातपस्तीव्रवैराग्येन्द्रियनिग्रहैः। श्रेष्ठत्वं सर्वमर्त्यानामित्यादि मनुरब्रवीत् ।४१।

पहले भी एक संन्यासी यतिपोषण के निमित्त से गृहस्थों से बहुत धन एकत्रित किया और उससे काशी में एक आश्रम बनवाकर ज्यादा पुत्र पुत्रिका वाले अपने पुत्र को उसे दे दिया था और कितने भी निराश्रित साधु लोगों को वहाँ रहने का स्थान भी नहीं देता था। उस दोष से वह अन्त में रौरव नामक नरक में बहुत काल तक पड़ गया था। श्रेष्ठता विद्या और तपस्या से आदमी में आती है और ज्येष्ठता अपने भाई बन्धुओं में ही जन्म से मिलती है। जन्म तो पशु पक्ष्यादि साधारण हो है। अनादि पितृवीर्य परम्परा तो अज्ञान से बाधित है। किस माता में किस पिता के द्वारा जन्म हुआ यह बात असर्वज्ञ लोगों के लिये दुर्ज्ञेय हो है। केवल पालन पोषणादि से माता पिता का अनुमान किया जाता है। यह तो पालित पुत्र जारज पुत्र साधारण ही है। जब अपनी जन्म की कथा ही इतनी दुर्ज्ञेय है तो पितामह प्रपितामहादियों के जन्म का दुर्ज्ञेयता के विषय में कहना ही क्या होगा। जन्म से अपने को श्रेष्ठ समझने वाले लोग "आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया" (१६/.५) इस गीता वाक्य के अनुसार असुर सम्पत्ति वाले समझे जाते हैं। जन्म से बड़ा समझना झूठे अहंकार को बढ़ाना ही है। उससे आत्मा का पतन भी हो जाता है।

अथ नवमोऽध्यायः (संन्यासिधर्माः)

पंचसप्ततिवर्षायुः परित्यज्य वनाश्रमम्। संन्यासाश्रममाश्रित्य यापयेच्छेषजीवनम् ।१।
प्राणिनामात्मयात्रायां सदा पर्यटतामिह। नैवैकावस्थितिर्युक्ता नाप्येकं स्थानमिष्टदम् ।२।
यदा चेतसि वैराग्यं भवेत्सर्वेषु वस्तुषु। वटुर्वा स्याद्गृहस्थो वा पुत्रद्यपुत्रादिमानपि ।३।
अविचार्यैव किंचित्प्राक् स्थितिं पश्चात्प्रभाविनीम्। पूर्वाश्रमात्सपद्येव नरो यत्याश्रमं व्रजेत्।
ब्रह्मचर्याद्गृहाद्वाऽपि यो हि संन्यस्तुमिच्छति। निमित्तं तस्य वैराग्यमेव नान्यद्वयोऽपि वा
वानप्रस्थाश्रमस्थस्य क्रमसंन्यासकामिनः। प्रोक्तश्चायं वयोवस्थानियमोऽन्यस्य नास्त्यपि।
एकदण्डी त्रिदण्डी वा ज्ञानदण्ड्यपि वा यतिः। मरणे जीवने चैव विहायेच्छां महीं चरेत्।

काषायवासा सततं ध्यानयोगपरायणः। जीर्णदेवालये वृक्षमूले वा निवसेत्सदा।८।
एकवारं दिने भिक्षां सर्ववर्णगृहेष्वपि। चरित्वा देहनिर्वाहं परिव्राड् कर्तुमर्हति।९।
बन्धुमित्रकलत्रादिपूर्वाश्रमजनाश्रयम्। देशं श्मशानवत्पश्यन् ततो दूरे यतिर्वसेत्।१०।
स हि सर्वगुरुप्रोक्तः सर्वान् संस्कर्तुमर्हति। मोचयेदुपदेशेन जनान् संसारबन्धनात्।११।
संन्यासिनश्च चत्वारः कुटीचकबहूदकौ। हंसः परमहंसश्च श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः।१२।
उत्तरत्तरुसंन्यासे ब्रह्मचारी गृही क्रमात्। गच्छेतामन्तिमें वानप्रस्थोऽपि गन्तुमर्हति।

पचहत्तर साल के बाद क्रम सन्यास ले लें। प्राणियाँ जीवित पर्यन्त एक अवस्था में और एक स्थान पर रह नहीं सकेंगे। आगे पीछे की बातें न सोचे, समय आते ही सन्यास ले ले। सब वर्णों से (पतितों को छोड़कर) भिक्षा लेकर एक वक्त भोजन करें। पूर्वाश्रम के बन्धु मित्र और देश को श्मशान की तरह देखें कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस नामों से चार प्रकार के संन्यासी हैं।

वानप्रस्थवदाद्यौ द्वौ स्वात्मरुच्यनुसारतः। ब्रह्मविद्यालयं सम्यक् सञ्चालयितुमर्हतः।१४।
धनसंग्रहमप्येतत्कार्यार्थं शिष्यवर्गतः। कर्तुमर्हति संन्यासी न स्पृशेदन्यथा धनम्॥१५॥
दण्डधारणमप्याद्यौ कुर्यातां शुनकादितः। त्रातुं भिक्षाटनादौ स्वं नान्यथा तत्प्रयोजनम्।१६।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दनयन्ताविहान्तिमौ। नैव दण्डं धारयेतां भीतिर्हि दण्डदर्शनात्॥१७॥
न दण्डधारणान्मुक्तिर्नापि काषायधारणात्। स्वसाम्प्रदायकं चिह्नमात्रमित्येव चिन्तयेत्॥
यो हि तद्धारणेनैव श्रेष्ठतां स्वस्य चिन्तयेत्। स मूढो नरकं यायात्तस्य मोक्षकथा कुतः॥
मुक्तिरात्ममनश्शुद्धया ब्रह्मात्मैकत्वनिश्चयात्। भवेच्छ्रेष्ठाश्रमित्वाभिमानतः सुतरां नहि॥
यथैव श्रेष्ठवस्त्रादियुक्ताः काञ्चनयोषितः। दृष्ट्वाऽन्ययोषितो गर्वम.प्नुवन्त्येवमेव ते॥२१॥
संन्यासं यःस्व तो नेच्छन् मठाध्यक्षत्वलोभतः।स्त्रीकरोति च संन्यासं सः स्या.द्भ्रष्ट इति श्रुतिः
गुर्वाश्रमाधिपत्यादि-स्थानंसंचिन्त्य ये नराः। तादृशं पूजयेयुस्ते नैव सद्गतिमाप्नुयुः।२३।
त्यागविद्यातितिक्षादियुक्तमत्युत्तमं यतिम्। विहाय बाह्यरूपादिहेतुमाश्रित्य ये शठाः।२४।
अतथाविधमाचार्यपीठाध्यक्षं प्रकुर्वते। ते सर्वानर्थकर्तारः सम्प्रदायस्य नाशकाः॥ २५॥
योषितां पुरुषाणां च ब्रह्मचर्यं वनाश्रमः। यत्याश्रमश्च दुर्वार्यो रुच्यधीनो गृहाश्रमः।२६।
आत्मोद्धरणहेतुः स्यादाश्रमत्रयमास्तिकाः। प्रापञ्चिकं तु गार्हस्थ्यं तस्माद्वैकल्पिकं हि तत्।
आश्रमत्रयकार्याणि स्वीयात्मोन्नतिहेतवः। गृहस्थाश्रमकार्याणि बन्धकान्यात्मनो ध्रुवम्॥
गृहस्थाश्रम-सन्तानोऽप्यात्मबन्धकरः स्मृतः। त[illegible]याश्रमसन्तानो निःश्रेयसप्रदो मतः।२९
तस्मादावश्यकं सर्वमर्त्यानामाश्रमत्रयम्। प्राणि[illegible]धारणं त्वन्यद्गार्हस्थं मलिनात्मनाम्॥

उनमें पहले दो, दण्ड धारण करें जिससे भिक्षाटन के समय कुत्ते अपने ऊपर न आ सकें। हंस और परमहंस दण्डधारण न करें जिससे सर्वभूतो को अभय दान हो सके। वस्तुतः दण्डधारण से या कषाय धारण मात्र से

मुक्ति मिलती नहीं। वह तो स्वाश्रम चिन्ह मात्र ही है। जो दण्डादिधारण मात्र से अपने को श्रेष्ठ समझता है वह मूढ़ नरक यातनायें भोगेगा। जैसे कुछ स्त्रियाँ अच्छे कपड़े पहन कर सामान्य स्त्रियों के सामने गर्विष्ठ होती हैं वैसा ही दण्डधारणादि मात्र से अपने को बड़ा समझने वाला भी होता है। विद्या वैराग्यादि से युक्त यति को छोड़कर जो लोग कुछ बाह्य निमित्तों से अतथाभूत यति को मठादिपति बनवाते हैं वे सर्वनर्थों का कारण हो जाते हैं। स्त्री और पुरुषों के लिये ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास ये तीन आश्रम अनिवार्य हैं। इन से ही अत्मा का उद्धार होता है। गृहस्थाश्रम और उसके कार्य भी बन्धहेतु होते हैं। अतः वह ऐच्छिक हैं।

दशमोऽध्यायः (स्त्रीधर्माः)

योषिद्धर्मान् प्रवक्ष्यामि विद्याभ्यासादिकालतः। संन्यासाश्रमपर्यन्तान् शृण्वन्तु मुनयः क्रमात्
स्त्रियः पंचदशाब्दान्तं शास्त्रं गुरुकुले ततः। भर्तृतश्च पठेयुस्तद्धर्मपालनपूर्वकम् ॥२॥
विवाहादिषु शास्त्रोक्तसंस्कारेषु च योषिताम्। विहिताः बहवो मन्त्रा वक्तव्यत्वेन कण्ठतः
दीर्घायुरस्तु मे पतिःजीवताच्छरदश्शतम्। इत्यादिकं प्रवक्तव्यं लाजाहोमादिषु स्त्रिया ॥
कथं मे पतिरित्यादि वक्तुं युक्तं पुरोधसा। तदन्येनापि वा तच्चेदुक्तं युक्तं कथं भवेत्? ॥५॥
नैष्ठिकब्रह्मचर्यं वा गृहे भर्त्रनुगामिता। विद्याभावे कथं तासां वानप्रस्थाश्रमादिकम् ॥६॥
स्त्रीनिःश्रेयससिद्ध्यर्थमप्यधीतिरवर्जिता। न सदा पशुपक्ष्यादिवत्पराधीनतोचिता ॥७॥
मोक्षप्राप्तिस्तु सर्वेषामनिवार्या विवेकिनाम्। अन्यथा ह्यात्महन्तृत्वप्रसक्तिः श्रुतिदर्शिता ॥
आत्मानात्मविचारैकसाध्यो मोक्षो निगद्यते। तदर्थं मानमेयादिज्ञानमावश्यकं स्त्रियः ॥९॥
स्त्रीशूद्रव्यतिरिक्तानामज्ञानामात्महन्तृता। श्रुत्यभीष्टेत्यपि प्राज्ञैः न वक्तुं शक्यते यतः ॥
क्वचिन्निषेधमात्रेण ये के चात्महनो जनाः। सामान्येति न संकोचमर्हति प्रबला श्रुतिः ॥
निषेधोऽध्ययनेऽवस्थाविशेषेप्युपपद्यते। नातीऽज्ञानान्धकारे तौ युक्तौ पातयितुं बुधैः ॥११॥
आत्माऽपि विद्यया रक्ष्यो नतु बाह्यनिबन्धनैः। सद् ग्रन्थंपठतामेव स्यादन्तर्मुखता नृणाम्
बाल्ये चापठने योषित्कमीक्षन्ती दिनं नयेत्। न पत्युर्मुखमीक्षन्ती नेतुं जीवितमर्हति।
न पत्युःसेवया मुक्तिर्भवेज्ज्ञानैकहेतुका। न विनाऽध्ययनं ज्ञानं भवेत्स्त्रीशूद्रपुत्रयोः ॥१५॥

अब स्त्रियों के धर्म सुनिये। वे पन्द्रह साल तक गुरुकुलों में पढ़ें और शादी के बाद अपने पति से पढ़ सकती है। विवाहादि संस्कारों में स्त्रियों के द्वारा बोले जाने वाले मन्त्र बहुत हैं और नैष्ठिक ब्रह्मचर्यादि नियमों का पालन करने के लिये भी वेद विद्या स्त्रियों को आवश्यक है।

मोक्ष प्राप्ति की आवश्यकता स्त्री पुरुषों को समान ही है आत्मज्ञान

शून्य व्यक्ति को आत्महत्या के बराबर दोष वेदों में बताया जाता है, इन सब हेतुओं से स्त्रियों को भी सब शास्त्र पढ़ना चाहिये।

श्रौतान्यपिहि कर्माणि न साक्षान्मुक्तिहेतवः। एवं सत्यन्यसेवातो मुक्तिःस्यात्कथमज्ञयोः ॥
ग्रहणे धारणे शक्तिःयासामस्तीश्वरेच्छया। न ता वारयितुं युक्ता ईश्वरास्तित्ववादिभिः ॥
पतिपत्न्योः सदाऽऽत्मानौ भिन्नावृणविशेषतः। सम्बद्धौ दम्पतित्वेन पुत्रमित्रारिवन्धुवत् ॥
स्वीयकर्मानुसारेण भिन्नलोकौ च गच्छतः। सत्यां वस्तुस्थितावेवं स्त्रियः पत्यनुगामिता ॥
गृहस्थाश्रमकाले तु स्त्रीपुंसोर्गौणमुख्यताम्। आश्रित्यापि प्रवक्तुं सा युक्ता स्यात्पण्डितोत्तमैः
पूर्वजन्मर्णसम्बन्धात्पतिपत्नीसुतादयः। सेव्यसेवकभावेन सम्बध्यन्ते परस्परम् ॥२१॥
ऋणापाये विभक्तास्ते कृतकर्मवशानुगाः। भिन्नयोनिषु गच्छन्तीत्येतत्सर्वनयेरितम् ॥२२॥
एवं वस्तुस्थितौ सत्यां पतिसेवा सदा स्त्रियः। सेवालोभेन मिथ्यैव पतिभिः परिकल्पिता
मृते भर्तरि संन्यस्ते वा तत्पत्नी गृहाद्वहिः। वानप्रस्थयतिस्त्रीणामाश्रमे निवसेत्सदा॥२३।
यदि सा बालपुत्रा स्यात्तं नीत्वा स्वाश्रमे ततः। पंचमाब्दात्परं विद्याप्राप्त्यै गुरुकुलेऽर्पयेत्
यदि स्वीयगृहे कोऽपि देवरादिर्न विद्यते। द्वित्रपुत्रा गृहे स्वीये निवसेद्विधवाव्रता ॥२६॥
सा चे द्विप्रादिशूद्रान्त-पुरुषेभ्यः सुतं यदि। जनयेत्सैव दुष्टा स्यान्न तत्पुत्रः स चेद्गुणी ॥
स यदीयधनाद्वाल्ये पोषितस्तस्य पिण्डदः। भवेन्नान्यस्य कस्यापि वीर्यावापादि कुर्वते ॥
यन्मे मातेति मन्त्राणां पाठतो मातृसङ्गतः। प्राप्तः पुत्रस्य दोषो हि नश्यतीति मनीषिणः ॥
यथैव ब्रह्महत्यादि नाशोद्देश्यककर्मणाम्। तज्जन्यदोषमात्रस्य नाशः फलमिदं तथा ॥

श्रौतयागादि कर्म भी मोक्ष के लिये उपयोगी नहीं हैं तो पति सेवा मात्र से स्त्रियों को मोक्ष कैसे मिलेगा। पूर्व जन्म के ऋणानुवन्ध से इस जन्म में पति पत्नी और पिता पुत्रादि रूप सम्वन्ध में कुछ समय तक एक जगह पर रहते और वह ऋण नष्ट हो जाते ही उनको परस्पर वियोग भी हो जाता है। फिर अगले जन्म में अपने-२ पुण्य पापों के अनुसार जन्म लेना तो सबके लिये बराबर है। ऐसी परिस्थिति में, पति सेवा से ही स्त्रियों को सब मिल जायगा ऐसा कहना उचित नहीं है।

पाणिग्रहिणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः। नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्म क्रिया हि ताः मनौ ८ अं०, २२७,यथा प्राणिग्रहणमन्त्रानुसारेण कन्या विवाह एव कर्तव्यो न तु स्त्रियः इत्युच्यते तथा अध्ययनादौ स्त्रीनिषेधदर्शनेन तस्या एव निषेधो न कन्याया इति वक्तुं युक्तं निष्पक्षपातिभिः।

दीक्षितो न जुहोति न ददाति, न दीक्षितान्नमश्नीयादित्यादौ यथा गृहीत दीक्ष एव विषयो न तु वंशपरम्परागत - दीक्षितत्व - व्यपदेशभाक् तथा निषेधविषयीभूतोऽपि शूद्रत्वोपाधिरेव न परम्परागत - शूद्रत्व - व्यपदेश भाग् । नच हुताया वपायां

दीक्षितान्नमश्नीयादिति वाक्यवलीन दीक्षासमय एव गृह्यते इति न तथा भवतु नत्वन्यत्रेति वाच्यम, 'हरेः पूजोपचारेण ध्यानेन नियमेन च। सत्यमार्थेण दीक्षतः मूलः कायो विजायते, । (पद्म भूमि ७३ अध्या, २६ श्लो०) इति वचनानुसारेण निषेधस्यपि उपाधिपरकत्वोपगमात् ।

अथैकादशोऽध्यायः (राजधर्माः)

उक्तेषु क्षत्रियेष्वेकस्तेजस्वी नियतेन्द्रियः । समुद्र इव गम्भीरो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१॥
सर्वकार्यसमर्थश्च मितभाषी क्षमादिमान् । प्रजानुरंजको राजा भवेद् देहवलान्वितः ॥२॥
तस्य धर्माः प्रजारक्षा बाह्याभ्यन्तरशत्रुतः । धनिकेभ्यः करं शुल्कमादायान्यत्र तद्व्ययः
अन्तःशत्रून्विजित्यादौ बाह्यशत्रून्विनिर्जयेत् । अन्यथाऽऽत्मीयराष्ट्रं स्वं जनांश्चापि विनाशयेत्
शत्रवोऽभ्यन्तराः कामक्रोधमानमदादयः । बाह्याश्च ते स्वदेशस्थाः परदेशनिवासिनः ॥५॥
धनं सर्वविधं राष्ट्रे विद्यमानं सुतादिकम् । प्रजागोसुमहीशस्य स्वीयं भवति वस्तुतः ॥६॥
स्वदेशस्थितसर्वस्य राजा स्वामी निगद्यते । तस्माद्राष्ट्रहिते सर्वमुपयुञ्जीत भूपतिः ॥७॥
रक्षास्वधिकृता ये तु प्रजा लुण्ठन्ति निर्भयम् । तेषां सर्वस्वमादाय राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत्
सामूहिकप्रजाकार्ये नियुक्ताश्च सवेतनाः । उत्कोचमपि ये नृभ्यो गृह्णीयुरपि तांस्तथा ९
आढ्यत्वाभिजनत्वोच्चकुलजत्वाभिमानतः । यो निन्देत्तर्जयेद्वान्यांस्तं दुष्टं दण्डयेद्भृशम् १०
अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा । तस्यापि राजा सर्वस्वमादायैव प्रवासयेत्
प्रजाविद्रोहिणो राजा राष्ट्रविद्रोहिणस्तथा । बलान्निगृह्य चोरांश्च कारागारे प्रवेशयेत् १२
मन्त्रिणो ये स्वकीयेषु पक्षपातं प्रकुर्वते । तेभ्यश्च राष्ट्रवित्तानि दापयन्ति च गुप्ततः ॥१३॥
पूर्वं स्वतो दरिद्राश्च राष्ट्रद्रविणचौर्यतः । पश्चान्महागृहारामान् क्रीणन्त्यन्यात्मवञ्चकाः १४
तेषां गृहादिसर्वस्वं तदीयानां च भूपतिः । विक्राय तद्धनं राष्ट्रधनागारे विनिक्षिपेत् ॥१५॥
अमन्त्रित्वदशायां ते कीदृक्सम्पत्तिशालिनः । पश्चाच्च कीदृशाः सन्तीत्यनुमायैव दण्डयेत्

क्षत्रिय वर्ण के जो–२ लक्षण वताये गये उन लक्षण युक्त पुरुषों में जो सबसे देह वली और नीतिशास्त्र ज्ञाता हो वही राजा बने । बाहर और भीतर के शत्रुओं को पराजित करना राजा का परम कर्तव्य है । अपने राष्ट्र के उपद्रवी और परराष्ट्र के शत्रु राजा बाहर के शत्रु हैं और अपने हृदय में रहने वाले काम क्रोधादि भीतर के शत्रु हैं पहले गरीब होकर भी मन्त्री और महामन्त्री बनकर घूसकोरी से बहुत कमाया हो तो उसकी सारी सम्पत्ति को राजा लीलां करवादें ।

देशे सर्वत्र विद्याया देवभक्तेर्जनेषु च । प्रचारं कारयेद्राजा विद्वद्भिः समदर्शिभिः ॥१७॥
विश्वस्य भगवानेकः प्रजाः सर्वाश्च तत्सुताः । धर्मस्तत्प्रापकोऽप्येको भाषाऽप्येकैव तद्वचः
तत्सुताद्रोहतत्प्रेमभाव एव नृणामिह । धर्मश्चैश्वरभक्तिश्च मुख्यौ श्रेयस्करावितिः ॥१९॥
अन्यत्सर्वमपभ्रंशं कल्पितं किल्बिषात्मभिः । अतस्त्याज्यमितीहार्यैः प्रचारं कारयेन्नृपः २०
विनैवात्मगुणान् विद्यां कस्यचिच्छ्रेष्ठता नहि । नीचत्वमपि दुष्कार्यं विना भवेन्न कस्यचित्
ये तु केषांचिदुत्पत्तिनिमित्तेनोच्चतादिकम् । नीचत्वमितरेषांच ख्यापयन्ति मृषोक्तिभिः २२

तान् राजा चर्मकारादिपादाघातैः प्रताडयन् । तन्निर्मितांश्च ग्रन्थादीन् महानद्यां नि...
जन्मतो ब्राह्मणत्वादिवर्णवादं करोति यः तं नीचं गण्डयोः पादरक्षाभ्यां ताडयेद्...

राजा देश भर में विद्या और दैवभक्ति का प्रचार करावे । सारा विश्व का भगवान् एक, सब प्राणि उनके पुत्र और उनके प्राप्ति का साधन ही धर्म, ऐसा प्रचार करवावें और धर्मशास्त्र निबद्ध भाषा से राजकार्य करवावें। जो लोग जन्म सिद्ध जाति प्रथा का और अनिमित्तक उच्चनीचादि भेदभावों का जनता में प्रचार करते हों उनको राजा कठिन दण्ड दें । जातिवाद समर्थक स्मृतियों में वेद सुनने पर शूद्र की जिह्वाच्छेदादि बताया गया, वैदिक वर्ण समर्थक इस स्मृति में जातिवादी के लिये दण्ड बताया गया है ।

स्वराष्ट्रभृत्यवर्गाय मन्त्रिवर्गाय चेश्वरः । वेतनं भुक्तिपर्याप्तं दापयेन्नाधिकं क्वचित् ॥२५॥
अधिकस्य प्रदाने हि कुर्युस्ते तस्य दुर्व्ययम् । तेन राष्ट्रजनानां स्याद्धानिरेव न संशयः २६
वेदाद्यध्यापकेभ्योऽपि दक्षिणामपि तावतीम् । दापयेदन्यथा ते स्युर्मदमात्सर्यशालिनः २७
ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते । लब्धेऽधिकधने तेषां क्षुद्रा स्यादेव कामना ।२८
तथा विशेषभोज्यान्नबहुस्त्रीसक्तचेतसः । सन्ध्यादिकं त्यजेयुस्ते पुत्रपौत्रादिभिः सह ।२९।
षष्टिवत्सरपूर्णस्य विश्रामो राजकार्यतः । विश्रान्तो नैव राष्ट्रस्य धनं प्राप्तुमिहार्हति ।३०।
कार्यकालार्जिताद्वित्ताद् वृद्धावस्थोपभुक्तये । किञ्चित्किञ्चित्समादाय रक्षयेद्राष्टकर्मठः ।३१
तस्य पुत्रास्तदा याग्रजीवने स्युः प्रपोषकाः । यश्च न पोषयेद्दुष्टः पितृंस्तं दण्डयेन्नृपः ।३२
पिता राष्ट्रोन्नत स्थाने यदि तिष्ठेत्तदात्मजाः । राष्ट्रे न क्वापि सर्वोच्च स्थाने गन्तुमिहेश्वराः
एवमेकगृहे कश्चिद्राष्ट्रोच्चास्थान भाग्यदि । तद्भ्राताऽपि न तादृक्षे स्थाने गन्तुंसमर्हति ३४
समस्त जनताराष्ट्रभक्त्या राष्ट्रंसुरक्षितम् । भवेन्नोचेत्पराधीनं तस्माज्जनहितो नृपः ॥३५॥
राष्ट्रोन्नतपदस्थाश्च योगक्षेमौ नृणां यदि । न पश्येयुस्तदा तेऽपि राष्ट्रं त्रातुमनीश्वराः ॥३६॥
सामान्यजनताराष्ट्रभृत्यवर्गार्थिकस्थितौ । ईषदेव हि वैषम्यं सह्यते नाधिकं जनैः ॥३७॥
एवं स्वराष्ट्रसामान्यभृत्यवर्गोच्च मन्त्रिणाम् । वेतनादिक्रमे नैव वैषम्यं सह्यतेऽधिकम् ॥३८
प्रायो द्वित्रगुणं सह्यं द्वेकयोश्च चतुर्गुणम् । ततोऽप्यधिकवैषम्यं राष्ट्रान्तर्युद्धकारकम् ।३९।
राष्ट्रेऽन्तर्युद्धसंकीर्णे बहिर्युद्धमपि ध्रुवम् । तत्रापि विजयः शत्रोरेव संभाव्यते बुधैः ॥४०॥
तादृग्बहुविधानर्थान् रोद्धुं प्रागेव भूपतिः । विद्ययाऽऽर्थिकसंस्थित्या साम्यं सम्पादयेन्नृषु ।
रोगिणोऽङ्गविहीनांश्च प्रनष्टस्वात्मपोषकान् । पोषयन्नेव राजा स्यान्नृपतिस्त्वन्यथा न हि ।
शास्त्रविद्याप्रचारार्थं राजा गुरुकुलान्यपि । राष्ट्रे सर्वत्र संस्थाप्य त्यक्तस्वार्थैः निरीक्षयेत् ॥४३

राष्ट्र के कार्यकर्ताओं का वेतन भी भुक्ति का पर्याप्त दिया जाय न कि अधिक । अधिक देने पर वे विलास भोगों में पड़ जायेंगे और सामान्य जनता और उनके बीच में आर्थिक विषमता [illegible] जायगी । इससे जनता के द्वार क्रान्तियाँ होती रहेंगी । राष्ट्र के सर्वोच्च अधिकारी वर्ग और सबसे छोटे कर्मचारियों के वेतन में दुगुना या त्रिगुणा अन्तर हो सकता है । चौगुणा से भी ज़्यादा जहाँ अन्तर हो वहाँ गृह युद्ध होता रहेगा । साठ साल के बाद

दीक्षि... धारियों का कार्यकाल समाप्त होगा और उसके बाद वे फिर नत्वन... नहीं ले सकते हैं। कार्यकाल के पैसा से थोड़ा-थोड़ा बचाकर व आग... जीवन के लिए रक्खे। राष्ट्र के उच्च स्थान पर यदि पिता या भाई काम करता हो तो उनके लड़के या दूसरे भाई उच्च अधिकारी हो नहीं सकेंगे। इस प्रकार राष्ट्र के सभी स्थानों में सभी कुटुम्बियों के बुद्धिमान व्यक्तियों को रखना चाहिए। रोगी और अङ्गहीन अनाथ लोगों के लिए अनाथ शरणालय बनावें और सड़कों में मांगने वालों को उनमें रख कर उनको भोजन दें।

अथ द्वादशोऽध्यायः (पुण्यपापवर्णनम्)

नराः पुण्यकृतः पुण्यान् लोकान् पापांश्च पापिनः। प्रयान्ति नित्यमात्मीयगुणदोषवशीकृताः
तत्रापि कीदृशं पुण्यं कृत्वा पापं च मानवाः। प्रयान्ति कीदृशं लोकं तच्छृण्वन्तु तपोधनाः
प्राणि पीडामकुर्वन्तो भृत्येभ्यो ये भृतिं सदा। यच्छन्ति ते सुखं विष्णोः पुरं यास्यन्ति मानवाः
शान्ता दान्ताश्च ये सर्व-प्राणिनामभयप्रदाः। तेऽपि यास्यन्ति वैकुण्ठरत्तनं त्वकुतोभयाः ४
केनापि हि निमित्तेन कदापि च कुत्रचित्। कमपि प्राणिनं यश्च न हन्यात्स्वीयजीवने ।५।
स्वर्णोज्वलैर्विमानैः स महात्मा ब्रह्मसन्निधिम्। नेष्यते देवगन्धर्वैः स्तूयमानात्मसद्यशाः ।६।
...पं स्वप्नेऽपि मत्स्यांश्च मनसा न स्पृशन्ति ये। ते हि नानुभविष्यन्ति सर्वथा नरकयातनाः
...भ्योऽन्नदातारः तृषार्तेभ्यो जलप्रदाः। शीतवातातपार्तेभ्यस्तन्निवारकवस्त्रदाः ॥८॥
...भोगान् स्वर्लोके भुक्त्वाऽन्ते पृथिवीतले। नृपाणां श्रीमतां गेहे जनिष्यन्ते सुखं नराः
...ाय वा स्वप्ने प्रसक्ते प्राणसङ्कटे। योऽनृतं न ब्रवीतीषत्तदीया सर्वसिद्धयः ॥१०॥
...देशवंश-बन्ध्वादि-पक्षपातं विहाय यः। गुणग्राही परस्यापि स हीहामुत्र पूज्यते ॥११॥
...न्मतो जातिविभ्रान्तिं विहाय समबुद्धयः। वेदशास्त्राण्यधीत्यान्यान् पाठयिष्यन्ति येऽन्वहम्
सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं ते शाश्वतानन्दमाप्नुयुः। तदुक्तार्थाननुष्ठाय शिक्षयन्तोऽपि चेतरान् १३
जन्मनोच्चत्वनीचत्व भ्रान्तिपङ्कनिमज्जितान्। उद्धृत्य वैदिकज्ञानजलेन क्षालयन्ति ये १४
ये चाप्रामाणिकानन्तमतभेदविनाशकाः। ते देवत्वं समासाद्य दिव्यान् भोगानवाप्नुयुः ।१५।
ईश्वरो जगतामेकः सर्वे जीवास्तदर्भकाः। तत्प्रेम्णैवेश्वरे भक्तिर्मतमन्योन्यमित्रता ॥१६॥
सर्वाणि नामरूपाणि तदीयानीह तेष्वपि। यत्किञ्चिदेकमर्चन्तः सर्वे स्युर्भ्रातरो मिथः ॥१७।
आहारः सात्विको धान्यकन्दमूलादिनिर्मितः। गवादिवन्मनुष्याणामपि नैवामिषंत्विति १८
कारयन्ति प्रचारं ये मानवेषु नरोत्तमाः। मोदिष्यन्ते सदा तेऽपि कैलासे शिवसन्निधौ ॥१९॥
जन्मनाऽप्युच्चनीचादिवर्णवादं करोति यः। स मूढस्तुच्छपाखण्ड प्रथासंवर्धकस्त्ववधी ।२०।
तादृङ्नीचजनस्यातिदुष्टस्य मुखदर्शनात्। अन्येषामपि दोषः स्यात्तस्मात्तं दूरतस्त्यजेत् २१
पुरा जातिप्रथावादो कश्चित्तु ब्राह्मणो भ्रमात् शूद्रं मत्वा द्विजाचारं वेदं नाध्याप्य दुर्मतिः
स्वपुत्रं शूद्रमध्याप्य नारकों चापि दुर्गति... प्राप्यान्ते स पुनर्नीचयोनिष्वेव निपातितः २३
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्वि...। वर्णो गार्हस्थ्य एवेति पैङ्गब्राह्मणमब्रवीत् २४
नास्ति किञ्चित्कुलं नीचमुत्कृष्टं वाऽस्ति भूतले। तद्धि प्राक्तन संस्कारात्सर्वत्रैव समीक्ष्यते २५
श्रेष्ठस्य श्रोत्रियस्यापि गृहे चाण्डालसूनवः। चाण्डालस्य गृहे चापि ब्राह्मणाः संभवन्ति हि
ऋणानुबन्धमाश्रित्य प्राणिनः सर्वयोनिषु। समुत्पद्य विनश्यन्ति तत्क्षयादीश्वरेच्छया ।२७।

पुण्य करने वाले पुण्य लोकों में और पाप कर
जायेंगे । जो किसी प्राणी का भी किसी निमित्त
और स्वप्न में भी मांस भक्षण करने का संकल्प म
किसी प्रकार की नरक यातनायें भोगेगा नहीं ।
प्रथा का और उच्च नीच भावों का प्रचार करता
है । अतः लोग उसका मुख भी न देखें ब्राह्मण आदि
पुरुषों में ही रहते हैं (इस विषय में २८ पृष्ठ की
भी कुल ऐसा नहीं जिसमें सभी व्यक्ति नीच या श्रेष्ठ
सम्बन्ध के कारण उच्च श्रोत्रिय घर में भी चाण्डाल और चाण्डाल के घर में भी उच्च श्रोत्रिय ब्राह्मण पैदा होते रहते हैं और ऋण सम्बन्ध नष्ट हो जाने पर अलग अलग हो जाते हैं ।

जातिभेदो यत्र-यत्र सृष्टिकर्त्रा चिकीर्षितः । तत्र तत्राकृतेर्भेदः प्राणिवर्गे विनिर्मित. ॥२८॥
सृष्ट्यादौ ब्राह्मणत्वादिवर्णा नोत्पादिता भुवि । किन्तु सामान्यतो मर्त्याः सृष्टाः सृष्टिकृता पुरा
तत्र यो वेदशास्त्रोक्तविधिमुल्लङ्घ्य वर्तितः । स चाण्डालाख्य वर्णोऽभूत्सर्वास्पृश्यो बहिष्कृतः
स व्यतीतकलेरादो जातिवादिभिरन्यथा । प्रकल्पितस्तदस्मत्तः शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः ।३१।
वानप्रस्थस्य संन्यास-दीक्षितस्य च पुत्रकः । ब्राह्मणस्य स्त्रियां शूद्राज्जातश्चाण्डाल ईरितः
यद्यप्युत्पादको तस्य चाण्डालो वस्तुतो भुवि । तथाप्यदोषिपुत्रे हि तदारोपस्तु कालवत् ।
मानुषकृतदुष्कृत्यैर्दुष्फूले समुपस्थिते । कालं कारणमाचष्टे लोकस्य गतिरीदृशी ॥३४॥
कालो हि सर्वथाप्येकश्चैकरूपो न दोषभाक् । जनाश्च सर्वथाभिन्नमतयो दोष भागिनः ३५
मर्यादानां राजकीय व्यवस्थायाश्च भञ्जकाः । तसतैले सहस्राब्दान् पीड्यन्ते यमकिङ्करै ३६
बुद्धिपूर्वं कृतं कर्म शुभं वाऽप्यशुभं नरैः । पापश्चित्तशतेनापि न नश्येद्भोगतो विना ॥३७
आज्ञात्वाऽऽचरितंकर्म घोरदृष्कृतमप्युत । पश्चात्तापेन वा प्रायश्चितान्नश्यति लोकवत् ३८
अबुद्धिपूर्वकं लोके हस्तपादादिताडितः । क्षमते प्रार्थितो धीमान् न ज्ञात्वा लेशतोऽपि वा॥
एवमज्ञान निर्वर्त्य पाप निष्कृतिरिष्यते । श्रुत्यादिभिर्नतु ज्ञात्वा कृतानामिति बुध्यताम् ४०
दत्वोत्कोचं गृहीत्वा वा कार्यं संसाधयन्ति ये । ते सर्वे निरयं यान्ति राजद्रोहिनराधमाः
स्वकर्तव्यं यदर्थं ते नियुक्ता राष्ट्रवित्ततः । तदप्युत्कोचमादाय प्रकुर्वन्ति महाखलाः ॥४२॥
ये त्वकर्तव्यमत्यन्तराष्ट्रह्रासप्रयोजकम् । तदप्युत्कोचमादाय कर्तुमिच्छन्ति तेऽपि च ।४३।
सर्पादिभिर्दश्यमाना बह्वब्दान् यमपत्तने । पृथिव्यां गर्दभा भूत्वा पीड्यन्ते रजकादिभिः ४४
एतादृशैराजकीयभृत्यवर्गैर्महीतले । अतिवृष्टिरनावृष्टी राष्ट्रह्रासो महानपि ॥४५॥
शासनस्य व्यवस्थाऽपि विनश्येदचिरादतः । लोके जलचरन्यायः सर्वत्रापि भविष्यति ४६
तस्माज्जनैः सावधानैः सङ्घीभूतैरिमेऽसुराः । शिक्षितव्याः पुनर्येन न स्यात्कोऽपि तथाविधः

बुद्धि पूर्वक किये हुए पाप का फल भोगना ही पड़ेगा । अज्ञानवश कृत पाप का प्रायश्चित से परिहार हो सकता है । घूस लेकर काम करने वाले और घूस देकर कार्य सिद्ध करने वाले सब यमलोक में सर्पों के द्वारा काटे जायेंगे । ऐसे राजभृत्यों को जनता एकत्रित होकर ठीक करें । इयं स्मृतिः समाप्ता ।